# रक्त के बीज

मन्मथनाथ गुप्त

चेतना प्रकाशन लिमिटेड

# राजभक्त

अँग्रेजों के जमाने की बात है।

रायसाहब हरनामदास कई दिन से देख रहे थे कि सड़क के उस पार एक मकान में कुछ नौजवान संदेहजनक रूप से आते जाते थे। उन दिनों क्रान्तिकारियों का बोलबाला था। रायसाहब ने समझा, हो न हो, ये क्रान्तिकारी ही हों। पर वे कुछ निश्चय पर नहीं पहुँच पाते।

आज जो एकाएक उसी मकान में एक धड़ाका हुआ, तो वह जल्दी से उठकर टेलीफोन के पास गये। टेलीफोन गाईड देखकर सब से पास के थाने का नम्बर देखकर बोले, 'हलो, हाँ....नम्बर टू थ्री टू.......'

जल्दी ही उनका कनेक्शन थाने के साथ जुड़ गया। उन्होंने उत्तेजित स्वर से टेलीफोन के चोंगे के अन्दर कहा, 'हलो . आप दारोगा जी हैं... हाँ आपसे ही जरूरत थी...मैं रायसाहब हरनामदास...३१, हीवेट रोड से बोल रहा हूँ...हाँ हाँ, जरूरत थी, तभी तो बुलाया...मेरे मकान के सामने के मकान में कई दिन से क्रान्तिकारी लोग आते जाते हैं...अभी एक बम फटा है...मैंने अपने कान से सुना है . ऐसे थोड़े ही कह रहा हूँ .. नहीं, टायर-वायर फटने की आवाज नहीं है...क्या पूछ रहे हैं ?.. पहले क्यों नहीं खबर दी ?...इसलिए नहीं दी कि पहले मैं निश्चित नहीं था...आज बम फटने पर निश्चित हुआ हूँ...क्या पूछ रहे हैं ?... कि मैं क्या चाहता हूँ ?...मैं यह चाहता हूँ कि आप आकर उन्हें गिरफ्तार करें...क्या कहा ? . आप कुछ नहीं कर सकते ?...आप नहीं कर सकते तो कौन करेगा ?...क्या कहा, यह आपके इलाके के बाहर है। आपका कहना यह है कि यह मकान दूसरे थाने में पड़ता है ?...तो क्या

हुआ ?...है तो ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर ही ?...मैं...हाँ...क्या मुझ से आप कह रहे हैं ?...कि दूसरे थाने में फोन करूँ ?..'

उधर से रिसीवर गिरा देने की आवाज हुई। अपमान के क्षोभ से, क्रोध से रायसाहब का चेहरा लाल पड़ गया। उन्होंने रिसीवर छोड़ दिया। 'ये दारोगा भी कितने नालायक हैं कि कहते हैं कि इलाके के बाहर पड़ता है, इसलिए कुछ नहीं कर सकते। यहाँ जब तक इलाके की बहस हो रही है, तब तक शायद मुजरिम भाग जाएँ।' रायसाहब अपने को दारोगा से अधिक राजभक्त समझते थे। उन्हें बहुत बुरा मालूम हुआ। टहलते-टहलते उन्होंने सामने के मकान की तरफ एक उड़ती दृष्टि डाली।

अरे यह क्या ? एक तांगा खड़ा था और कुछ युवक उत्तेजित मुद्रा में एक घायल युवक को उठा कर तांगे में रख रहे थे। रायसाहब का यह हाल हुआ कि जैसे उनकी आँख के सामने एक महान अनर्थ हो रहा है, और वे कुछ नहीं कर पा रहे हैं। उनका दम घुटने लगा। उन्हें केवल राजभक्ति की बात नहीं, बल्कि वे डरते भी थे कि कहीं कहा जाय कि तुमने इस बात की रिपोर्ट क्यों नहीं की। अब भी अगर पुलिस आ जाती।

उन्होंने जल्दी से फिर टेलीफोन गाइड खोला, और दूसरे थाने का नम्बर मिलवाकर वहाँ के दारोगा से कहा, 'हलो.. आप... ?...आप दारोगा जी हैं ?...मैं ?...मैं रायसाहब हरनामदास हूँ...क्या कह रहे हैं ?....कहाँ से बात कर रहा हूँ ?...अपने मकान से...३१ नम्बर हीवेट रोड...घटना क्या है पूछ रहे हैं।...घटना यह है कि मेरे मकान के सामने एक लाला बनमालीदास...बनवारीदास नहीं बनमालीदास का मकान है...पता नहीं डाक्टर हैं कि सौदागर हैं।......हाँ तो असली बात सुनिए...उनके मकान में एक बम फटा...झुंझलाकर टायर नहीं, कह रहा हूँ कि बम फटा...कैसे जाना कि बम फटा ?...ऐसे जाना कि एक आदमी घायल हो गया...अभी-अभी...पन्द्रह मिनट हुआ होगा... क्या कह रहे हैं ?...खबर देने में इतनी देर क्यों हुई ?...देर क्यों हुई

कि मैंने नजदीक जानकर दौलतगंज में फोन किया था। ...उन लोगों ने कहा कि षे कुछ कर नहीं सकते, क्योंकि यह उनके इलाके के बाहर है।...जरूर उन्होंने कहा है...वाह मैं कह रहा हूँ, उन्होंने यह कहा। .. अच्छा तो आ रहे हैं, आइए...' झट से रिसीवर गिरा दिया गया।

रायसाहब टेलीफोन से हट गये, और उत्तेजित हालत में चहलकदमी करने लगे। वे एक एक बार सामने के मकान की तरफ देखने जाते और भौहें तानते जाते थे, 'इन क्रान्तिकारियों ने देश का सर्वनाश कर डाला। किसी भी तरीके से इनका दमन होना चाहिए। उचित अनुचित सब तरीके से। देश के प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि इस कार्य में हाथ बटावें। इसके साथ किसी प्रकार के भावुकता में आकर रियायत करना बिलकुल देशद्रोह है। चाहे अपना लडका ही हो उसे पकड़ा देना चाहिए। ये क्रान्तिकारी बड़े गैर जिम्मेदार होते हैं, कहीं पुलिस पर गोली चलाई तो कोई मुसाफिर ही मर गया। इनके साथ कभी रियायत न हो। भारतवर्ष तो अहिंसा का देश है, यहाँ इन्होंने अच्छी तूफानी बत्तमीजी चला रखी है।'

रायसाहब इन बातों के साथ साथ यह भी सोचते जाते थे कि इस कारगुजारी के लिए अब की बार पहली जनवरी को रायबहादुरी का खिताब जरूर मिलेगा। सितम्बर है, जनवरी में क्या देर है? अभी देखते-देखते नया साल लगता है। जब खिताब मिलेगा तब मैजिस्ट्रेट मिस्टर मौरगन उनके साथ कैसे तपाक से हाथ मिलायेंगे हा, हा, हा, हा। आम के आम और गुठली के दाम। देश का काम भी किया और खिताब भी मिला। गांधीजी ने भी तो कहा है कि ये लोग देश का उपकार कर रहे हैं! जरूर।

वे चहलकदमी करने लगे।

उनके ड्राइंग रूम के भेड़े हुए दरवाजे को शोर के साथ खोलते हुए उनका मँझला लड़का अजीत उत्तेजित अवस्था में एक पोटली लेकर भीतर आया। उसने यह भी नहीं देखा कि रायसाहब उधर टहल रहे हैं।

उसने झट से एक आलमारी खोली और उसमें वह पोटली रख दी।

'हो क्या रहा है ? अरे हमारी किताबों की आलमारी में इस मैली पोटली को क्यों रख रहा है ? तो क्या आखिर में हमारी आलमारी में तुम्हारे कबूतरों का दाना रहेगा। स्टुपिड ! अभी ले जाओ।"...रायसाहब हरनामदास ने क्रोध में अधैर्य होते हुए कहा...

सायसाहब ने जिसे इस प्रकार डांटा, लेकिन इसका जवाब उसने फुसफुसाकर दिया, चुप रहिए, बाबूजी चुप रहिए।.. बनमालीदास के घर में तलाशी हो रही है। पुलिस सुन लेगी।'

रायसाहब क्रोध के साथ आलमारी की तरफ बढ़े, बोले, 'नहीं नहीं यह सब नहीं होगा, यहाँ तुम क्रान्तिकारी साहित्य नहीं रख सकते। थोड़े दिनों से मैं देख रहा हूँ तुम बहुत बिगड़ते जा रहे हो। मैं इन्हें उठाकर फेंक देता हूँ।'

मँझले लड़के ने उसी प्रकार कानाफूसी में, जहाँ तक चिल्लाया जा सकता है; चिल्लाकर कहा, 'छुइए मत, छुइए मत, नए ढंग का बम है, टी, एन, टी, ट्रीनिट्रो टोलिओल। अभी अभी रमाकान्त...हा जरा सा फटा था, उसी से एक आदमी की क्या हालत हुई, अगर आप उसे देखते ...'

कहाँ रायसाहब रायबहादुरी का स्वप्न देख रहे थे और कहाँ अपनी ही आलमारी में अनारकिस्टों का बम। वे ऐसे पीछे हटे जैसे साँप की फन पर पैर रख दिया हो। एक छलांग में सात हाथ दूर पहुँचे और दीवार से पीठ लगाकर खड़े हो गये। भय क्रोध, लज्जा से उनकी ऐसी हालत हो रही थी कि वे कागज के झंडे की तरह थरथर काँप रहे थे। बड़ी देर तक उनके मुँह से बात ही नहीं निकली। उनकी घिग्घी बँध गई।

जब वे बोलने लायक हुए तो चुने हुए शब्दों में लगे लड़के को डाँटने। जिसका सर्वस्व खो चुका है वह जैसे कोसता है, ऐसे वे कोसने लगे। लेकिन लड़का पिता की गालियों की ओर ध्यान नहीं दे रहा था। वह सामने के मकान की ओर बीच-बीच में देख रहा था। रायसाहब गुस्से में कहते जा

रहे थे, 'तुझको मैं अपना लड़का नहीं मानता। निकल जा मेरे मकान से। तेरे ऐसे लड़के का बाप होने से सौ जन्म तक पुत्र ही न रहे सो अच्छा है। हम लोग खानदानी राजभक्त हैं। तू इसमें कहाँ से आ गया। मैं जानता था कि साहित्य ही पढ़ता है, पर यहाँ तक? दूर जा, मैंने तुझे त्याज्य कर दिया। मैं तेरा मुँह नहीं देखना चाहता। नालायक....'

रायसाहब यहीं तक कहने पाये थे कि एकाएक लड़के ने उसी प्रकार फुसफुसाकर कहा, 'शान्त हो जाइए। पुलिस उस मकान की तलाशी ले चुकी, अब हम लोगों के मकान की तरफ आ रही है। हाँ इसी तरफ आ रही है। आप शान्त होकर एक कुर्सी में बैठिए। किसी प्रकार यह न दिखलाइये कि आप उत्तेजित हैं, नहीं तो चौपट हो जायगा।...'

रायसाहब हरनामदास फौरन पुत्र की आज्ञा मानकर एक कुर्सी पर बैठ गये और लगे एक पुस्तक उलटने। मानों कुछ हुआ ही नहीं।

खटपट करते हुए एक दारोगा रायसाहब के नौकर के साथ कमरे में घुस आया और रायसाहब को गुड मार्निंग करते हुए एक कुर्सी में जम गया। इस बीच में रायसाहब का पुत्र वहाँ से खिसक गया था।

दारोगा जी ने कुछ भूमिका बाँधे बगैर कहा, 'रायसाहब आप बहुत भारी गलती में थे, तलाशी में कोई आपत्तिजनक वस्तु नहीं मिली। आपने धड़ाका सुना होगा, पर टायर फटने का भी ऐसा ही धमाका होता है। क्या कहा? कोई घायल हुआ था। वहाँ तो कहीं कोई चिन्ह तक नहीं मिला। हाँ आपने तो अच्छे मकसद से खबर दी थी, पर हम हैरान हुए, और अभी क्या है? अभी तो बहुत कम हैरान हुए बाद को और हैरान होंगे। आजकल बात-बात में प्रांतीय असेम्बली में प्रश्न की झड़ी लग जाती है। लेने के देने पड़ जाते हैं...फिर कुछ रुककर बोला... पर हमारा जवाब तो तैयार है। हम आपका नाम बतला देंगे कि आपने

फोन किया था, उसी पर हम आये थे। जो कुछ भी हो मामला कुछ अच्छा नहीं रहा।'

दारोगा जी ने रायसाहब की तरफ एक अद्भुत तरीके से मुँह बनाकर देखा मानो कह रहे थे कि तुम रायसाहब हो, छोड़ दिया नहीं तो तुम्हें बताते। रायसाहब अब बड़ी अजीब परिस्थिति में थे। पहले कुछ शायद शक भी था पर अब तो सारा प्रमाण आलमारी के पीछे रखा था। अब तो उन्हें कुछ सन्देह नहीं था।

दारोगा के अविश्वास से रायसाहब को इतना क्रोध आया कि उन्हें यह प्रबल इच्छा हुई कि अभी बम को आलमारी से निकालकर अपनी सचाई का प्रमाण दे दें, पर दाँत से दाँत दबाकर वे चुप रह गये। दारोगा कहते जा रहे थे, 'मैंने बनमालीदास से ज्यों ही बम की बात कही, त्यों ही वह खूब कहकहे लगाने लगा। उसने कहा एक साइकिल का टायर जरूर फटा है, पर बम तो यहाँ कहीं नहीं है। सामने ही एक पंकचरवाली साइकिल रखी हुई थी, फिर भी मैंने समझा कि शायद धौल दे रहा है, इसलिए मैंने खूब अच्छी तरह मकान की तलाशी ली। पर यहाँ बम ही क्या एक सुई भी नहीं मिली। साहब यह मामला ठीक नहीं हुआ। बहुत ही खराब रहा।'

इस बीच में रायसाहब का मँझला लड़का फिर आ गया था। उसने बीच में नाक सिकोड़ते हुए कहा, 'पिता जी आजकल अक्सर ऐसी गलती करते हैं। उस दिन मध्य रात में उठाकर बोले कि कोई दरवाजा खटखटा रहा है, हम लोगों ने कहा कि कहाँ कुछ सुनाई तो नहीं देता। फिर भी नौकर लोग लालटेन लेकर गये, तो देखा कोई नहीं है।' मँझले लड़के ने यह जो घटना बतलाई यह बिलकुल कपोलकल्पित थी, पर इस समय रायसाहब खीझते हुए भी चुप रहे गये और प्रबल भावावेश के कारण थरथर काँपने लगे। बहुत कोशिश करने पर भी इस कम्पन को न रोक सके।

रायसाहब अन्दर ही अन्दर खून का घूँट पीकर चुप थे, पर अब

उनसे सहन न हुआ। बरस पड़े, 'देखा साहब आजकल के लड़कों की हालत। अगर भूल हुई तो हुई, इसमें ऐसा क्या अनर्थ हो गया ?... कहकर वे स्वर को चढ़ाते हुए लड़के से बोले, यहाँ से दूर हो जा। मैं कोई बात सुनना नहीं चाहता।' अब उनको एक बहाना मिल गया तो अपना असली गुस्सा उसी बहाने उतारने लगे।

अबकी लड़का सचमुच चला गया।

रायसाहब काफी देर तक चुकने के बाद दारोगा जी से बोले, 'मुझे दुःख है कि मैंने आपको कष्ट दिया, पर विश्वास रखिए आपको हैरान करने का उद्देश्य नहीं था।' कहकर उन्होंने अपना छुटकारा करना चाहा।

यों तो रायसाहब पुलिसवाले या इस किस्म के लोगों की सोहबत को पसन्द करते थे, पर आलमारी में जो चीज रखी हुई थी, उसके कारण वे इस समय यह चाहते थे कि दारोगा जल्दी से जल्दी तशरीफ ले जायँ। पर दारोगा तो लेक्चर देने की मानसिक परिस्थिति में था। वह और दारोगाओं की घूसखोरी और अपनी इमानदारी पर देर तक व्याख्यान देकर तब बिदा हुआ। जाते समय उसने रायसाहब से करीब करीब कहलवा लिया कि वे जिला मजिस्ट्रेट मिस्टर मौरगन से दारोगा की तारीफ करेंगे। रायसाहब क्या करते राजी हो गये।

जब दारोगा जी चले गये तो रायसाहब ने नौकर को बुलाकर कहा कि मँझले लड़के को बुला लाओ, मँझला लड़का उस दिन घर ही पर न आया। वह यह सोच कर घर नहीं आया कि रायसाहब बहुत नाराज हैं और पता नहीं गुस्से में क्या कर बैठें।

रायसाहब रात दस बजे तक बैठे-बैठे बम को अगोरते रहे। घटना संध्या से पहले की थी, इसलिए यथा समय नौकर वहाँ अंधेरा देखकर, स्विच दबा कर बत्ती जलाने आया, पर रायसाहब ने उसे मना कर दिया, और साथ ही यह भी कह दिया कि अगर कोई उनसे मिलने आवे, तो कह दे कि वे घर पर नहीं हैं।

वे अंधेरे में बैठे-बैठे इन्तजार करते रहे कि कब लड़का आवे और

उससे कहें कि बम ले जावे। वे मन ही मन गालियों का एक लम्बा-सा वाक्य भी तैयार करते जाते थे, पर जब रात के दस बज गये, घर के सब लोग खा-पी चुके, वे खुद भी ड्राइंग रूम में ताला डाल कर घर के अन्दर से खा आये। पर लड़का नहीं आया। उन्होंने सोचा कि अब खुद ही कुछ करना चाहिए। ऐसा तो नहीं हो सकता था कि उनकी तरह एक प्रसिद्ध राजभक्त के मकान पर रात भर बम रखा रहे। नहीं, कभी वे ऐसा होने नहीं दे सकते।

वे सोचने लगे कि अब क्या हो? इच्छा हुई कि जाकर स्त्री से कुछ सलाह पूछें, पर उन्हें स्त्रियों पर विश्वास नहीं था। न मालूम किससे कहती फिरे कि घर में एक बम आया था, और उसे क्यों फेंक दिया और त्यों फेंक दिया और यदि बात घूमते-घूमते मिस्टर मौरगन के कानों में पहुँचे, तो ऊँचे-ऊँचे अफसरों में उठना बैठना भी मारा जाय।

उन्होंने बाकी दो लड़कों के विषय में सोचा तो ऐसा मालूम पड़ा कि इन लोगों से कहने से कुछ फायदा नहीं होगा। ये लोग अपनी बीबियों से कहेंगे, और वही बात होगी जिसे बचाना है।

रायसाहब के घर में कई नौकर थे, जिनमें से एक बहुत पुराना था, और किसी जमाने में उनके बहुत से गुप्त काम किया करता था। उन्होंने उसको बुलाया। इतनी रात गये मालिक ने उसे क्यों याद किया इससे उसे बड़ा ताज्जुब हुआ। वह आकर प्रश्नसूचक दृष्टि से ताकते हुए मालिक के सामने खड़ा हो गया। मालिक उसे बहुत ध्यान से देख रहे थे। नौकर ने पूछा, 'हुजूर क्या हुकुम है?'

रायसाहब को एकाएक कुछ नहीं सूझा, कम से कम उन्हें यह हिम्मत न हुई कि बम के सम्बन्ध में कुछ कहें, पर कुछ कहना तो था ही, इसलिए बोले, 'आजकल मुहल्ले में बहुत चोरी हो रही है। समझे, बहुत होशियार रहा करो। . ...'

नौकर ने मालिक को खुश करने के लिए कहा, 'हुजूर तभी आज पुलिसवाले आये थे?'

रायसाहब की भौंहें तन गईं, बोले; 'सो जिसलिए भी आये थे, तुम जाओ अपना काम करो।'

नौकर चला गया।

अब रायसाहब बड़ी चिन्ता में पड़े कि क्या हो। अन्त में उन्होंने जब देखा कि घर के सब लोग सो गये हैं, तब उन्होंने जूता उतार डाला, एक रेशमी चादर ओढ़ ली, और सावधानी से बम की पोटली को निकाला। फिर चादर के अन्दर बम को छिपा कर वे ड्राइंग रूम के किवाड़ के सामने खड़े होकर देखते रहे कि कहीं कोई लगा हुआ तो नहीं है। फिर वे वहाँ से निकलकर बँगले के बाहर गये, और धीरे-धीरे बिना किसी उद्देश्य के चलने लगे। वे एक-एक कदम चलते थे और तीन दफे चौंक कर आगे-पीछे देख रहे थे। इस प्रकार वे कुछ दूर निकल गये तो उन्हें ऐसा मालूम दिया कि कोई आहट मालूम हो रही है, बस उन्होंने फौरन पोटली को दीवार के पास रख दिया और उलटे पाँव भागे। रायसाहब इस बुढ़ौती में इतना दौड़ सकते हैं, यह किसी को विश्वास नहीं हो सकता था। वे एक मुहूर्त्त में अपने बँगले में पहुँच गये। पर ज्यों ही वे बँगले में घुसे, त्यों ही उन के उसी नौकर रामगुलाम का सधा हुआ डंडा उनकी पीठ पर पड़ा।

पर रायसाहब ने तुरन्त अपना परिचय दे दिया। खैरियत यह हुई कि डंडा पीठ के चर्बीले अंश पर पड़ा था, इसलिए कोई विशेष चोट नहीं आई। फिर रायसाहब इस समय इतने खुश थे कि उनको चोट अधिक मालूम नहीं हुई। वह तो इस बात से खुश थे कि उनकी राजभक्ति पर धब्बा नहीं आया।

अगले दिन शाम के अखबारों में यह खबर निकली कि क्रान्ति-

कारियों ने दौलतगंज थाने के पीछे एक भयानक बम फिट करके रख दिया था, एक राउंडवाले सिपाही ने गलती से उस पर पैर रख दिया तो बड़े जोर का धड़ाका हुआ, और वह सिपाही बहुत बुरी तरह घायल हो गया, शायद जीवित न रहे।

पर यह खबर गलत थी। कम से कम इस बार किसी राजद्रोही या क्रान्तिकारी ने यह नहीं रखा था। एक रायसाहब ने यह बम रखा था। पर इसे किसी ने न जाना।

# क्रान्ति का मुहूर्त्त

१९४२ का जमाना था। ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस पर प्रहार किया, तो सारा देश ही कांग्रेस हो गया। ऐसा युग था कि बड़े बड़े कायर भी रात भर में बहादुर हो गए। सूम और मक्खीचूस धन लुटाने लगे। उसी युग की कहानी है। रायसाहब हरनामदास किसी ऊँचे सरकारी ओहदे पर थे, पर उनके रिटायर हुए कई साल हो गए थे। सुना जा रहा था कि वे फिर से नौकरी में बुलाये जायेंगे, क्योंकि आदमियों की कमी थी, और खूब हट्टे-कट्टे बने हुए थे। इन दिनों वे रिटायर होकर जौनपुर में अपने बंगले में रहते थे। बंगले के साथ लगी हुई बहुत जमीन थी, उसी में वे बाग-बानी करते रहते थे।

बंगले के पास ही रेल लाइन थी। वे रोज सबेरे उसी पर टहलने जाया करते। कभी-कभी उनके साथ उनकी छोटी लड़की कालेज की छात्रा लिली भी रहती थी, पर लिली रहे या न रहे, वे तो नित्य टहलने जाते थे।

जब तक टहलकर वापस आते, तब तक घर में चाय आदि तैयार हो जाती। आकर वे नाश्ता करते, फिर बागवानी में जुट जाते। दूर-दूर से लोग उनके पास पौधा माँगने आते। सचमुच यह बाग ऐसा था, जिस पर उन्हें नाज हो सकता था।

रायसाहब पुस्तकों के भी शौकीन थे, दो-तीन अखबार भी मँगाते थे। बागवानी से थक जाते तो अखबार पढ़ते, अखबार से ऊबते तो बाग में जाते। लिली तो घोड़े पर भी चढ़ती थी।

रायसाहब की बैठक में कभी-कभी राजनीतिक बहस भी छिड़

जाती। पास ही थाना था, वहाँ के बड़े दारोगा नन्दलालसिंह भी कभी-कभी आते। इन बहसों में रायसाहब तथा नन्दलाल हमेशा सरकार की तरफदारी करते, और लिली विरोध में रहती थी। लिली की कई सखियाँ भी आती थीं, वे भी लिली के पक्ष में रहती थीं। लिली की एक सखी का भाई अमोलकचन्द तो लिली से भी आगे बढ़ा हुआ था, दारोगाजी के सामने तो वह खुलता नहीं था, पर अन्य समयों में वह ऐसे बात करता था मानो वह किसी भयंकर क्रान्तिकारी दल का सदस्य है। लड़कियों को वह सरदार भगतसिंह, काकोरी के शहीद आदि जब्त किताबें पढ़ाया करता था। लिली की आँखों में तो उससे बढ़कर बहादुर छोकरा कोई हो ही नहीं सकता था। उससे जब्त किताबें लेकर लिली अपनी तरफ से अपने कालेज की लड़कियों को पढ़ाती रहती थी।

आन्दोलन जितना ही तीव्र होता जा रहा था, रायसाहब उतना ही उसके विरुद्ध जहर अधिक उगलते जाते थे। एक दिन उन्होंने अमोलकचन्द के मुँह पर करीब-करीब चुनौती के लहजे में कह दिया, 'छोटे मुँह बड़ी बात अच्छी नहीं होती, बातों से कहीं क्रान्तियाँ नहीं हुआ करती।'

यों रायसाहब हमेशा ही विरोध में कुछ न कुछ कहा करते थे, पर आज उन्होंने जिस लहजे में बातें कहीं, उससे सब दंग रह गये। कुछ देर तक बैठक में सन्नाटा रहा, फिर सब एक-एक करके उठ कर चले गए। रायसाहब की बीबी तक ने इस लहजे को नापसन्द किया। अकेले में बोली, 'तुमने तो अमोलक को डाँट-सा दिया। कितनी मुश्किल से तो उसे बुलाती हूँ, कितने बड़े खानदान का लड़का है, तुम्हें क्या ये लोग बात करते हैं तो, यह उम्र तो बात करने की होती ही है।'

रायसाहब खिसिया कर बोले, 'ये लोग बात करेंगे, तो काम कौन करेगा? पढ़ती हो देश में क्या हो रहा है, ज्यादा बात अच्छी नहीं होती।'

उस दिन बात वहीं तक रह गई। दो-तीन दिन बाद रायसाहब सबेरे टहल कर लौट रहे थे, तो देखा कि दूर में थाने के पास कुछ भीड़

जमा है। वे कौतूहलवश वहीं पहुँचे। उनको सभी जानते थे, वे एकदम भीतर चले गये। दारोगा ने उनको अपने कमरे में बुला कर कहा, 'खबर मिली कि पास के गाँव में क्रान्तिकारियों ने प्लास बाँटे हैं, बस इसी खबर पर आज सवेरे मैंने धरमपुर की तलाशी ली तो पचास के करीब प्लास निकले।'

'प्लास क्यों बाँटें ?' रायसाहब ने पूछा।

'रेल लाइन उखाड़ने के लिए।'

'अच्छा।' राय साहब बोले।

दारोगाजी ने अपनी बुद्धिमानी दिखाने के लिए कहा, 'आज रात बारह बजे इस लाइन से एक मिलिटरी गाड़ी जाने वाली है, तभी क्रान्तिकारियों ने प्लास बाँट दिये। पर वे डाल-डाल हम पात-पात...मैं सारी बात समझ गया। तलाशी ली तो प्लास निकले। हा हा हा हा, कुछ चायशाय मँगाऊँ ?'

रायसाहब उठ पड़े, बोले, 'नहीं, मैं जल्दी में हूँ...फिर सोच कर बोले, भाई एक बात है, मुझे एक प्लास दे दो, बाग के नल खोलने बन्द करने में काम आयेगा। हाँ, अगर कोई दिक्कत न हो तो.........'

दारोगा ने कहा, 'जरूर, जरूर ले जाइए......'

रायसाहब को एक प्लास मिल गया, और वे खुशी-खुशी घर गये और वहाँ बाग के सब नलों को प्लास से खोल-खोल कर ठीक करने लगे। बहुत खुश हुए कि रोज की एक हाय किलकिल दूर हुई।

संध्या समय उन्होंने लिली से कहा, 'चलो बेटी टहल आवें।'

यद्यपि वे शाम को टहलने नहीं जाते थे, बाग में ही रहते थे, पर लिली को बहुत खुशी हुई। दोनों रोज की रेल लाइन पर टहलने निकल गये। एक पुलिस का आदमी इस किनारे तैनात था, उसने राय-साहब को देख कर सलाम किया।

रायसाहब दूर तक निकल गये। जब वे लौट रहे थे तो संध्या हो चुकी थी। बीच रास्ते में रायसाहब रुके, फिर चारों तरफ देखकर एकाएक

रेल लाइन के बोलटू ढीले करने लगे। दिन भर प्लास चलने का अभ्यास किया था। पाँच मिनट में २५ बोलटू निकाल डाले। लिली दंग रह गई, पर कुछ बोली नहीं।

राय साहब ने जब काम खतम कर दिया, तो प्लास वहीं डाल दिया, और लिली का हाथ पकड़ कर वहीं से लाइन से उतर कर घर पहुँचे। घर में मजलिस सी लग रही थी, और राजनीति की चर्चा हो रही थी।

रायसाहब ने लिली से रास्ते में कह दिया था कि कहीं टहलने गये थे, कोई पूछे तो शहर का नाम ले लेना। रायसाहब ने घर में राजनीतिक चर्चा सुनी तो फिर वे संजीदगी से राष्ट्र-विरोधी पक्ष का समर्थन करने लगे। अमोलकचन्द की बात खतम भी नहीं हुई थी कि रायसाहब बहस में टूट पड़े, रोटी पर मक्खन की मोटी तह लगाते हुए बोले, 'भली चलाई इन देशभक्तों की। अंग्रेज न होते तो हम जंगली हालत में होते, उन्होंने ही हमें सब कुछ सिखाया, और आज हम चले हैं, उन्हें निकालने..........'

अमोलकचन्द भी बिगड़ा हुआ था, उसने राय साहब की रूरियायत न की, और चायखाने के अन्दर खूब मुर्गे लड़े। मजे की बात यह है कि लिली भी आज दुरंगी बातें कर रही थी। अमोलकचन्द को इस बात से बड़ा आश्चर्य हो रहा था।

उस दिन रात बारह बजे सामरिक गाड़ी यथा रीति आई और वह पटरी पर से उतर गई। २६ गोरे उसी समय मर गये, १२ अस्पताल में मरे इत्यादि। पुलिस ने इस मामले में ४० आदमियों को गिरफ्तार किया, जिसमें अमोलकचन्द भी था।

इस बीच में रायसाहब हरनामदास फिर से जज तैनात हुए और वे इसी जिले के सेशन जज बने। यह मुकद्दमा धूमधाम कर यथा रीति निम्न अदालत से उन्हीं के इजलास में आया।

तीन महीने सेशन में मुकद्दमा चला। राय साहब ने सब ४० आदमियों को सजा सुनाई। अमोलकचन्द को उन्होंने सरगना करार देकर

२० साल की सजा दी।

इजलास से घर पहुँचे, तो लिली ने उसे कहा, 'पापा यह आपने क्या किया ? मुझे तो निश्चय था कि आप सबको छोड़ देंगे।'

राय साहब ने चेहरा गम्भीर बना कर कहा, '३८ गोरे मर गये, सजा न करता तो क्या करता ?'

'पर पापा ?'

'हाँ बेटी।'

'आप तो जानते थे कि वे दोषी नहीं हैं, आप तो जानते हैं कि कैसे बोलट निकाले गये।'

लिली और भी कुछ कहना चाहती थी, पर कह न सकी, फफक-फफक कर रोने लगी। रायसाहब ने उसे अपनी गोद में खींच लिया, बोले, 'क्या तुम समझती हो मैंने वह काम किया था, नहीं उस समय तो मैं, मैं ही नहीं रह गया था, मेरे सिर सवार होकर किसी ने मुझ से सारा काम करवा लिया था। वह क्रान्ति का मुहूर्त था !...पर फिकर मत करो, अपनी कलम से मैंने सबको सजा दी है, पर उस फैसले पर छिद्र हैं कि हाईकोर्ट में वह एक भी मिनट नहीं टिकेगा। कुछ अमोलकचन्द की परीक्षा भी तो होने दो, कि केवल बातें ही मारता है कि कुछ दम भी है।......'

'तो पापा तुम जानते हो ?' लिली निश्चिन्त होकर करीब करीब हँसती हुई बोली।

'हाँ बेटी क्यों नहीं ?' रायसाहब ने बेटी को स्नेह से दबाया।

'तो तुम राजी हो ?' लिली ने शरमाते हुए पूछा।

'हाँ, राजी क्यों नहीं हूँ, लड़का अच्छा है, हाँ उपर से मैं इस शादी से कोई सम्बन्ध नहीं रखूँगा, समझी न ? अब मुझ पर वह क्रान्ति का मुहूर्त सवार थोड़ी ही है।'

पुत्री ने पिता के पैर छू लिए। दोनों की आँखों में आँसू थे।

# भ्रान्ति भंग

करीम दिल्ली में ताँगा चला कर किसी तरह अपने बाल-बच्चों को पालता था। गत पन्द्रह साल से उसका एक ही कार्यक्रम था। बहुत सबेरे उठ कर घोड़े की सेवा में जुट जाता था, फिर ताँगा जोत कर कोई बेतुका गाना गाता हुआ चल देता था। खैरियत थी, कि घोड़ा और ताँगा उसी के थे। पर ताँगा खरीदते समय उसके बाप ने जो कर्ज लिया था, न तो अब तक वही अदा किया जा सका था, और न नया घोड़ा खरीदते समय उसने जो कर्जा लिया था, वही अदा किया जा सका था। इसलिए वह कर्ज के बोझ से दबा हुआ था। वह अपने को मालिक समझता, तो कैसे? फिर भी विशेष दुखी न रहता।

करीम के बाप कर्ज चुकाते-चुकाते मर गये। पर कर्ज ज्यों का त्यों बना रहा। उन दिनों ताँगा बहुत सस्ता चलता था, और चीजें भी सस्ती थीं। मुश्किल से सूद ही दे पाते थे। अब इधर सालों से ताँगे में पैसे अधिक मिलते हैं। पर एक तो बस सर्विस अधिक हो गई, और दूसरे चीजों के दाम अन्धाधुंध बढ़ गये। न उसे गेहूँ की रोटी मिले, न घोड़े को चना। और फिर मनहूस महाजन का रोज-रोज तकाजा। अकेला करीम कमाने वाला, और छै खाने वाले। पाँच तो घर के लोग, और एक घोड़ा। और घोड़े को करीम अपने घर के किसी भी सदस्य से अधिक महत्वपूर्ण मानता था। वह तो साफ-साफ कहता था, मैं कमाता थोड़े ही हूँ, यही अकबर कमाता है। खुदा न करे, पर यह मरा कि सब मरे। अब तो उधार भी नहीं मिलेगा।

करीम कर्ज के कारण बड़ा खिन्न रहता था। खिन्नता को दूर करने के लिये वह कभी-कभी ताड़ी, और जब मौका लगता, तो घटिया शराबें पीता था। पर अपनी स्त्री जोहरा के मारे इसमें भी उसे पूरा लुत्फ न आता था, क्योंकि घर पहुँचता, तो बहुतेरा इलायची और पिपरमेंट खाने पर भी जोहरा भाँप लेती, और फिर तो खूब खबर लेती। 'बुड्ढे हो गये, और कुछ ख्याल नहीं। बाल-बच्चों की रोटियों के लाले पड़े रहते हैं, पर इनको हर वक्त गुलछर्रा ही सूझा करता है।'

करीम की समझ में यह न आता, कि यदि उसने थककर एक कुल्हड़ ताड़ी पी ही ली, या एक घूँट शराब ही, तो इसमें कौन-सा गुलछर्रा उड़ाना हो गया। अरे, कड़ाके की सर्दी में और तेज लू में वही ताँगा लेकर इधर से उधर घूमता रहता है, कि कोई और ? जीवन-संगिनी की इन आलोचनाओं से उसे बड़ी निराशा होती, पर वह अधिक कुछ न कहता था। किसी दिन अधिक पीये होता, तो दो-चार हाथ झाड़ देता। इससे जोहरा कुपित होती, पर जैसे करीम के लिये, कभी-कभी शराब पीना स्वाभाविक था, वैसे ही जोहरा के लिये उसे डाँटना, और फिर उसके फलस्वरूप कभी-कभी पिट जाना भी स्वाभाविक ही था। सदैव से ऐसा ही होता चला आ रहा था। कम से कम जोहरा को ऐसा ही मालूम था। उसने अपनी माँ को बाप के हाथों तथा सास को ससुर के हाथों पिटते देखा था।

इसमें कोई विचित्रता न थी। इन लोगों का जीवन मानो किसी अन्य रूप में इनके बाप दादों के जीवन की ही पुनरावृत्ति थी। जोहरा को इस बात से कोई शिकायत न थी, पर करीम को थी। जोहरा को घर के काम-काज से कभी छुट्टी ही न मिली, कि वह किसी बात पर गहराई से सोचे।

पर करीम को समय मिलता था। जब वह बिना सवारी के होता था, तो ताँगे की पीछे वाली सीट पर बैठता था, फिर एक सिगरेट सुलगाकर हाथ में लगाम लेकर, वह सवारी की तलाश में इधर से उधर घूमता था।

ऐसे समय वह गंभीर से गंभीर समस्याओं पर विचार करता था। अक्सर वह विचारों में इतना निमग्न हो जाता, कि घोड़ा मौका देख कर घर लौट आता। जब ताँगा एकाएक एक झटके से घर के सामने खड़ा हो जाता था, तब उसे होश आता था। यद्यपि घोड़ा उसके चेहरे को नहीं देख पाता था, पर लगाम के खिंचाव से ही वह अपने मालिक की मानसिक अवस्था की थाह लगा लेता था।

करीम परिवर्तन के लिये लालायित था। वह समझता था, कि कोई भी परिवर्तन होगा, तो उसका भला ही होगा। कैसे भला होगा, इस सम्बन्ध में उसकी कोई स्पष्ट धारणा न थी। पर वह समझता था, कि परिवर्तन में कोई भलाई है, और यह बात उसके दिमाग़ में जम गई थी।

इस कारण जब लीग के लोग आकर उसे समझाने लगे, कि पाकिस्तान होगा तो भला होगा, तो वह उसका जबर्दस्त समर्थक हो गया। मौका निकालकर उनकी सभाओं में जाने लगा, उनकी तरह बातें करने लगा, और अपने नये विचारों के फल स्वरूप चिर-परिचित अस्ट्राखान टोपी छोड़ कर, फुन्देदार तुर्की टोपी पहनने लगा।

करीम विचारों से अनुदार न था, और अब तक हिन्दुओं से उसे कोई घृणा नहीं थी। पर लीगियों ने जब दाढ़ी हिलाहिला कर बातें कहीं और उसने सोचा, और देखा कि वह एक हिन्दू सेठ का कर्जदार है, तो वह दिल से कुछ और सोचते हुए भी लीगियों की तरह बातें करने लगा। और जब कुछ दिनों तक वैसी बातें करता रहा, तो वह वैसा सोचने भी लगा। उसके विचार भी उसी तरीके के बन गये।

उन दिनों भारत का बँटवारा करीब-करीब तय हो चुका था। यद्यपि पहले करीम को राजनीति से कोई मतलब नहीं था, पर अब वह जरा-जरा सी बात की खबर रखता था। उसे बताया गया था, कि अब पाकिस्तान होगा, और इस बात से वह इतना खुश था, कि रोज रात को शराब पीकर लौटता था।

जोहरा उसे हमेशा की तरह बुरा भला कहती थी, पर वह अब उसकी परवाह नहीं करता था। एक दिन जोहरा ने जब कहा, 'दो-दो लड़कियाँ बड़ी हो गई हैं। इनकी शादी के लिये कुछ जमा करोगे, कि सब पैसे नशे में ही फूँक डालोगे', तो करीम बोल उठा, 'तुमको तो बस छोटी-छोटी बातों की पड़ी है। औरत की जात ठहरी, कम अक्ल। पता भी है कि पाकिस्तान होने वाला है ?'

उसने 'पाकिस्तान होने वाला' इस बात को ऐसे कहा, जैसे हिन्दू मोक्ष की तथा मुसलमान बहिश्त की बात करते हैं। उसके चेहरे पर एक दिव्य ज्योति झलक रही थी, जो या तो पहुँचे हुए महात्माओं के या पागलों के चेहरे पर दृष्टिगोचर होती है।

सच तो यह है, कि जब उसके महाजन लाला नत्थूमल ने आकर उससे सूद माँगी, तो उसने टाल दिया। बोला, 'महीने, दो महीने में सारी रकम मयसूद के चुकता कर दूँगा। घबराते क्यों हो ?'

पहले ऐसे मौकों पर वह लाला नत्थूमल से गिड़गिड़ा कर बात करता था। कहता था, कि सूद कहाँ से लाऊँ ? रोटी के लाले पड़े रहते हैं। माफी दो ! फिर जब लाला आँखें लाल-पीली करते थे, तो कहता था, कल दूँगा। परसों अदा कर दूँगा। लाला भी काइयाँ था। ठीक समय तय करवा कर ही जाता था, और उस नियत समय पर या तो वह खुद पहुँचता था, या उसका गुमाश्ता आ पहुँचता था। अब की बार लाला नत्थूमल ने जो उसका लहजा बदला हुआ पाया, तो आश्चर्य तो यह है कि उन्हें आश्चर्य नहीं हुआ, और फिर वे तब से आए ही नहीं। उन्हें पूरा भरोसा था, कि उनका रुपया मारा नहीं जायगा।

कोई आश्चर्य करे या न करे, पर जोहरा को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसे आश्चर्य इस कारण और भी अधिक हुआ, कि उसके पड़ोसी सेवाराम का भी वही हाल था, जो करीम का था। सेवाराम के पास दो गायें थीं। उन्हीं का दूध, दही, गोबर बेचकर उसका गुजारा होता था। वह भी कई बच्चों का बाप था। इन दिनों वह भी शराब अधिक पीने लगा

था। वह भी अपनी स्त्री शिवरानी की बात नहीं सुनता था। उसके द्वारा रोके जाने पर, वह भी एक दिन बक गया, 'स्वराज्य होने वाला है। अब काहे की फिक्र ? अंग्रजों की सारी जायदादें और मेमें हमको मिलेंगी !'

जायदाद मिलने की बात सुनकर शिवरानी खुश हुई, पर मेम का नाम सुनकर उसका माथा ठनका। बोली, 'मेम लेकर तुम क्या करोगे ? बूढ़े होने को आये, पर बदमाशी नहीं छोड़ी।'

सेवाराम यों ही बक गया था। इतना सोचा नहीं था, कि इसका यह मतलब हो सकता है। जल्दी से बात बदलते हुए बोला, 'मेमें हम लोगों को थोड़े ही मिलेंगी। बड़े-बड़े नेताओं के लिये ही काफी नहीं होंगी। हमें तो शायद कोई देशी ईसाइन भी नहीं मिलेगी।'

स्पष्ट था, कि उसके लहजे में अफसोस था। शिवरानी बोली, 'याद रखना, मेम हो या ईसाइन, यहाँ कोई आयेगी तो इतने झाड़ू मारूँगी कि याद करे। कोई ऐसी वैसी नहीं हूँ। अहीर की बेटी हूँ।'

सेवाराम को पत्नी की यह देशद्रोहिता पसन्द नहीं आई, कि यह स्वराज्य नहीं चाहती। वह चुप रहा। सोचा कि, 'जब स्वराज्य हो जायगा, तो इससे निपट लूँगा इससे अभी क्यों भिड़ूँ ? आखिर औरत है। इसकी जबान पर लगाम नहीं है।'

इस तरह उसने स्त्री के साथ तकरार तो किया नहीं, पर मन ही मन अपने स्वप्न की इमारत बनाता रहा। यद्यपि उसने मेम की बात कही थी, पर उसका मन न मेम पर था, न ईसाइन पर था। उसका मन तो पास के ईसाई यतीमखाने में पली हुई तगड़ी गायों पर था। काश, उसमें से एक मिल जाती ! यह सोचते ही उसका मन ललचा उठता था।

सेवाराम और करीम में गहरी दोस्ती थी। करीम कितना भी लीगी हो, मौके पाकर सेवाराम के साथ वह दिल की दो-दो बातें कर लेता था। दोनों का एक विषय में संयुक्त मोर्चा रहता था, कि स्त्रियाँ मूर्ख होती हैं, और उनको मुँह नहीं लगाना चाहिए। पर कुछ भाग्य का परिहास ऐसा था, कि अपनी स्त्री के बिना उनका कोई काम नहीं बनता था। वे जब एक

दूसरे से मिलते थे, तो ऐसे बात करते थे, मानो किसी ने जबर्दस्ती उनकी शादी कर दी थी। पर वस्तुस्थिति इसके बिलकुल विपरीत थी। दोनों जब तब एक साथ बैठकर एक-दो कुल्हड़ भी पीकर गम-गलत कर लेते थे। पर इन दिनों दोनों का पीना हद से बाहर चला जा रहा था। करीम मन में सोचता, कि बाप-दादों के समय के कर्ज के बोझ से मुक्त हुआ चाहता है। आह, ऐसा सोचना भी कितना आनन्द-जनक था! ऐसा सोचते समय सिर कितना हल्का मालूम होता था, जैसे बीमारी से उठने के बाद होता है।

सेवाराम जब से स्वराज्य जल्दी होने की खबर सुनने लगा था, तब से उसने निश्चय कर लिया था, कि ईसाइयों के यतीमखाने की एक गाय उसे जरूर मिलेगी। उसका तर्क कुछ इस प्रकार का था, कि बड़े लोगों को तो ईमारतें, नौकरियाँ और मेमें मिलेंगी। तो क्या उसे एक गाय भी नहीं मिलेगी? ऐसा नहीं हो सकता। उसका देशभक्त हृदय ऐसा सोचकर देशद्रोह कैसे करता!

इन्हीं परिस्थियों में स्वराज्य हुआ, और पाकिस्तान भी बना। न सेवाराम को वह गाय मिली, और न करीम कर्ज से मुक्त हुआ। पर दोनों में से कोई एकदम निराश नहीं हुआ। दोनों अपने अपने ढंग पर आशा बाँधे रहे। सेवाराम तो गाय न पाने का दर्द करीब-करीब भूल गया। पर करीम को तो बहुत खला, क्योंकि कर्ज उसके सिर पर एक बोझ की तरह था, और उसका न उतरना खलने की बात थी।

एक दिन करीम अपने लीगी साथियों से लड़ गया। बोला, 'तुम लोगों ने तो कहा था, कि ऐसा होगा, वैसा होगा। यहाँ तो कुछ भी नहीं हुआ। हिन्दू महाजन तो हम से अब भी सूद लेता है।'

लीग के एक भक्त ने कहा, 'अमाँ, अभी इतना हुआ, आगे और

होगा। देखे जाओ कि कायदे आजम किस तरह सब ठीक कर देते हैं। अभी हुआ ही क्या है? फिर से सल्तनत मुगलिया कायम होगी।'

करीम को कुछ तसल्ली नहीं हुई। पर जब बड़े-बड़े पढ़े लिखे मुसलमान ऐसा कहने लगे, तो उसे चुप हो जाना पड़ा। भीतर ही भीतर आग सुलगती रही, पर ऊपर से शांति रही। उसका शराब पीना जारी रहा, बल्कि कुछ बढ़ा ही।

इतने में पश्चिम से बड़ी अद्भुत खबरें आने लगीं। सुनाई पड़ने लगा, कि हिन्दू मुसलमानों को मार रहे हैं, और मुसलमान हिन्दुओं को। दिल्ली में सन्ध्या के बाद न तो मुसलमान हिन्दू मुहल्लों में जाते, न हिन्दू मुसलमान मुहल्लों में। उधर जो लीगी करीम से कह चुके थे, कि सल्तनत मुगलिया फिर से होने वाली है, उनमें से कई सपरिवार पाकिस्तान चले जा चुके थे। जो रह गये थे, वे अब भी वही नारा दे रहे थे कि 'देखे जाओ। अभी क्या हुआ है? अभी तो दिल्ली पर भी हमारा परचम फहरायेगा।' पर इनमें से भी जिसको मौका मिलता था, वे पाकिस्तान रवाना होते जाते थे। करीम भी दुविधा में था कि क्या करे। वह महाजन से बचने के लिये कहीं भी जाने को तैयार था। पर उसने सुना था, कि वह ताँगा और घोड़ा नहीं ले जा सकता। इसलिये वह जा नहीं रहा था। पर पाकिस्तान के सम्बन्ध में उसने लीगियों से इतनी तारीफ़ सुनी, कि अक्सर वह सोचने लगता, कि तांगा छोड़ कर वहाँ जाना ठीक रहेगा या नहीं। कहने वालों के अनुसार तो वहाँ कोई अभाव नहीं था, पर फिर भी अपने तांगे-घोड़े को छोड़ कर जाने को उसका जी नहीं चाहता था।

सितम्बर में एकाएक दिल्ली की परिस्थिति खराब हो गई। पता नहीं क्या हुआ, कि मुसलमानों पर मार पड़ने लगी। करीम सपरिवार मारा जाता, पर सेवाराम ने उसे छिपा लिया। अब तो मुसलमानों में पाकिस्तान जाने का आन्दोलन जोर पकड़ गया। जब दंगा शान्त हुआ, तो सेवाराम ने करीम से रूआँसे होकर कहा, 'भाई, तुम भी चले जाओ।'

सभी ने यही सलाह दी। करीम के कई जान-पहचानी मारे गये थे। वह उनके मारे जाने की कहानियाँ सुनता, तो उसके रोंगटे खड़े हो जाते। वह जाने के लिए राजी हो गया। ताँगे को तो लोगों ने जला दिया था, पर घोड़ा बचा हुआ था। सेवाराम ने अपनी गायों में उसे बाँध कर बचा लिया था। तय यह हुआ, कि घोड़ा सेवाराम के पास रहे। उसने करीम-परिवार की जानों को जिस प्रकार बचाया था, उसके लिये उसे यह घोड़ा दे देना कोई बड़ी बात नहीं थी। पर सेवाराम लेने को राजी नहीं हुआ। करीम ने कहा, 'भाई, मैं इसे ले नहीं जा सकता। मिट्टी के मोल बेचना पड़ेगा। इसे तुम्हीं रख लो।'

तब सेवाराम को राजी होना पड़ा। यह तय हुआ, कि सेवाराम का लड़का एक ताँगा लेकर इसे जोतेगा। जब करीम पाकिस्तान के लिये चलने लगा, तो वह अपने घोड़े अकबर से गले मिलने गया। बड़ी देर तक मिलाई हुई। घोड़ा हिनहिनाने लगा। करीम रोने लगा। उसी दिन करीम सपरिवार हवाई जहाज में लाहोर पहुँचाया गया।

करीम कभी हवाई जहाज पर चढ़ा नहीं था, इसलिये हवाई जहाज पर चढ़ कर वह खुश हुआ। प्रारम्भ अच्छा था। लड़के, लड़कियाँ खुश थीं, केवल जोहरा गम्भीर थी। पर किसी को उसकी परवाह नहीं थी। करीम ने सोचा, कि जरूर पाकिस्तान में अच्छा रहेगा। एक अकबर के बिछोह के अतिरिक्त उसके लिए सब बातें खुशी ही थी। जब लोगों ने बताया, कि अब हवाई जहाज पाकिस्तान पर उड़ रहा है, और जोरों से 'पाकिस्तान जिन्दाबाद' 'कायदेआजम जिन्दाबाद' का नारा लगाया, तो उसने भी गला फाड़-फाड़ कर साथ दिया। यहाँ तक कि जब सब लोग चुप हो गये, तो भी उसने एक बार पागलों की तरह 'कायदेआजम जिन्दाबाद' का नारा लगाया। दूसरे लोग हँस पड़े। पर उसने परवाह नहीं की। एक सफेद दाढ़ी वाले मुसलमान ने आकर उसकी पीठ ठोंकी। कहा, 'शाबास, बेटे! तुम्हीं लोगों के दम से पाकिस्तान बना है।'

करीम को इस बूढ़े का पीठ ठोंकना बहुत अच्छा मालूम हुआ। वह

जोश से भर गया। उसे ऐसा मालूम हुआ, कि वह जैसे मिराज में या सशरीर स्वर्ग में जा रहा है। अब उसे किसी बात का, यहाँ तक कि अकबर के बिछोह का भी दुःख नहीं था। उसे इस वक्त ऐसा मालूम हो रहा था, कि पाकिस्तान के नेताओं के हुक्म पर वह हवाई जहाज से कूद पड़ सकता है। अभी, इसी मिनट....

इस प्रकार खुशी की हालत में वह हवाई जहाज से उतरा। हवाई अड्डे पर स्वयंसेवकों, पुलिसवालों और फौजियों की भरमार थी। उतरने वालों ने खूब नारे लगाये। फिर लोग एक कैंप में पहुँचाये गये। पंजाबी स्वयंसेवकों ने पाकिस्तान प्रवेश करने वालों का स्वागत किया। करीम-परिवार के साथ आठ-दस नौजवान स्वयंसेवक बराबर लगे रहे। वे करीम को 'हजरत' उसकी बीबी को 'अम्माजान' लड़कों को 'बिरादर' और लड़कियों को 'हमशीरा' कहते थे। कैंप में खाने-पीने तथा रहने की व्यवस्था कुछ अच्छी नहीं थी। पर इतने लोगों से घिरे रहने तथा 'हजरत, हजरत' कहे जाने के कारण करीम को इतनी खुशी हुई, कि उसने किसी भी असुविधा को असुविधा नहीं समझा। वह तो ऐसा अनुभव करने लगा था, मानो वह कोई नेता हो। उसके चेहरे पर भी धीरे-धीरे इस भावना की छाप आने लगी। वह खुश था। पर जोहरा खुश नहीं थी। वह लड़कियों पर हर समय भुनभुनाती रहती थी।

सुना जा रहा था, कि सब को रहने की जगह तथा काम मिलेगा। पर करीम को पाकिस्तात में रहते दो महीने हो गये, पर अभी तक कुछ नहीं मिला था। लेकिन इससे क्या? काम तो चला ही जा रहा था। अपना ही राज्य था। यदि थोड़ी बहुत असुविधा थी, तो कोई बात न थी।

करीम समय बिताने के लिए इधर-उधर घूमता था। एक दिन जब वह ऐसे ही घूम रहा था, तो उसे इसहाक मिला। हवाई जहाज पर उससे करीम की भेंट हुई थी। यों कुछ जान-पहचान पहले की भी थी। दिल्ली के करौल बाग में इसहाक रहता था। उसका एक निजी मकान और चाँदनी में रेशम की अच्छी दूकान थी। पर दंगे में उसका

लड़का और बीबी मारी गई थी। वह भी मारा जाता, पर घर में वह नहीं था। अब भागकर करीम के साथ आया था।

सलाम दुआ के बाद, इसहाक ने कहा, 'जब से यहाँ आया हूँ, तब से बड़ी तकलीफ है। न कोई खाने को पूछता है, न पीने को। पेट तो किसी दिन नहीं भरा। गोश्त तो आँख से देखने को भी नहीं मिलता।' सचमुच इसहाक दुबला हो गया था।

करीम को ये बातें पसन्द न आई। बोला, 'भाई, अल्लाह की दुआ से मुझे तो सब चीजें मिल जाती हैं।'

'मिलती होंगी। मुझे तो बड़ी तकलीफ है।'

'रजाकारों से क्यों नहीं कहते?' करीम ने पूछा।

इसहाक ने हँसकर कहा, 'अरे, भाई, वे ही तो सब चीज बीच में खा जाते हैं, नहीं ऊपर से तो सब चीजें मिलती हैं।'

करीम ने रुखाई से कहा, 'मेरे रजाकार तो बहुत अच्छे हैं।' फिर सोच कर बोला, 'शिकायत कर दो।'

'यही सोच रहा हूँ।' इसहाक के माथे पर बल थे।

थोड़ी देर बात करके वह चला गया। करीम ने (जैसा कि एक नेता को चाहिये था, क्योंकि करीम अब अपने को एक नेता समझता था) इसहाक को तसल्ली देकर बिदा किया।

तीन-चार दिन बाद करीम टहलने निकला, तो देखा कि एक जगह भीड़ जमा है। पास जाकर देखा, तो मालूम हुआ, कि कपड़े से ढकी हुई एक लाश है। पूछने पर मालूम हुआ, कि एक हिन्दू की लाश है। यह सुन कर करीम को बड़ा आश्चर्य हुआ, क्योंकि उसने सुना था, कि अब इधर के इलाकों में कोई हिन्दू रह नहीं गया है। यह हिन्दू यहाँ कैसे मिल गया, इस बात को जानने की प्रबल इच्छा हुई, क्योंकि यद्यपि अब वह हजरत करीम गजनवी हो चुका था, पर उसके अन्दर का खानदानी तांगावाला मरा नहीं था।

उसने पास खड़े एक रजाकार से पूछा, 'क्यों, भाई, यहाँ यह

हिन्दू कैसे आ गया था ?'

इस पर रजाकार ने कहा, 'यह मुसलमान पनाहगजीन (शरणार्थी) बन कर आया था, और अब मौका पाकर यहाँ के लोगों को भड़का रहा था, कि खाना कम मिलता है, बद इन्तजामी है, घूसखोरी है।'

करीम ने कहा, 'तोबा, तोबा!'

'हाँ, नहीं तो क्या? बगावत फैला रहा था। हम लोगों ने रंगे हाथों पकड़ लिया, और मार डाला। पता लगा है, कि ऐसे कई इन कैंपों में हैं।'...कहकर, रजाकार ने लाश के पास सिर झुकाये खड़े कई आदमियों की तरफ घूर कर देखा।

करीम को भी कुछ बुरा मालूम हुआ, कि एक ऐसे खतरनाक आदमी की लाश के पास इस तरह कैंप के आदमी क्यों खड़े थे। रजाकार ने प्रोत्साहन पाकर कहा, 'इस हिन्दू ने अपना नाम इसहाक रक्खा था।'

करीम ने अवाक होकर पूछा, 'इसहाक?'

'हाँ।'

'क्या यह अक्तूबर में आया था?'

'हाँ, हाँ, वही हरामजादा है। कहता था, कि उसकी बीवी और लड़का हिन्दुओं के हाथ मारे गये। साला एक नम्बर का मक्कार था।'

करीम समझ गया, कि यह वही इसहाक था। न मालूम क्या हुआ उसे, कि एकाएक चक्कर-सा आ गया। वह किसी तरह उलटे पाँव अपने स्थान पर पहुँचा, और जाकर अपने बिस्तरे पर लेट गया। उसका सिर घूम रहा था।

जोहरा दौड़ी हुई आई। बोली, 'क्या हुआ? क्या हुआ?'

करीम ने कहा, 'कुछ नहीं, कुछ नहीं।'

कई दिनों में जाकर करीम इस धक्के से सँभल कर उठ खड़ा हुआ। पर वह अब पहले की तरह सुखी न था। वह जानता था, कि इसहाक मुसलमान था, और उसकी बीवी तथा लड़का मारा गया है। कैंप में कई एक व्यक्ति उसे जानते थे। उसे सब से आश्चर्य इस बात पर हुआ,

कि रजाकारों ने एक व्यक्ति को इस तरह मार डाला, और जरा भी जाँच तक नहीं हुई। वह अब चाहता था, कि कैंप-जीवन से छुटकारा मिले।

उसने अपने सहायक रजाकारों से कहा, 'अब तो, भाई, कहीं जगह मिल जाय। यहाँ तो तबीअत नहीं लगती।'

उन लोगों ने पूछा, 'हजरत, आपको कोई तकलीफ तो नहीं है?'

'नहीं, नहीं। फिर भी कब तक कैंप में रहें? यहाँ तो छः महीने हो गये।'

'हाँ, हाँ।'

महीने भर के अन्दर ही रजाकारों की कोशिश से करीम-परिवार को कैंप से छुट्टी मिली। जाने की तारीख भी तय हो गई।

निश्चित तारीख पर करीम-परिवार एक स्पेशल ट्रेन में बैठाया गया। करीम को बताया गया, कि उसे एक हिन्दू का छोड़ा हुआ बढ़िया मकान मिलेगा। उस ट्रेन में एक सौ से अधिक परिवार थे। मर्द अलग थे, स्त्रियाँ अलग। 'अल्लाहो अकबर' आदि नारे के साथ गाड़ी रवाना हुई।

जब गाड़ी कई घंटे चलकर एक स्थान पर पहुँची, तो लोगों ने आँखें फाड़-फाड़ कर देखा, कि वहाँ तो एक मिल है, और कुछ कुलियों की खोलियाँ हैं। पास कोई हवेली भी नहीं है। लोगों को बड़ी निराशा हुई। तो क्या यहाँ कुली का काम करना है? पर इतना सोचने का समय कहाँ था? लोग अपने परिवार के लोगों को तथा सामान बटोरने में लग गये, क्योंकि जिसको जहाँ जगह मिली थी, वह वहीं चढ़ गया था। स्पेशल ट्रेन होने पर भी बड़ी भीड़ थी।

करीम ने जल्दी में जोहरा तथा लड़कों को ढूँढ़ लिया, पर बड़ी दो लड़कियों का कहीं पता न था। सब ने मिल कर खाली डिब्बों को, बेंचों के नीचे, ऊपरी बर्थों पर, पाखानों में, यहाँ तक कि करीम के उत्साही लड़कों ने इंजन तक को ढूँढ़ डाला, पर फातिमा और हुस्नबानू का कहीं पता न लगा। जाँच करने पर पता लगा, कि वे चढ़ाई ही नहीं गई थीं। उनको किसी ने स्टेशन पर भी नहीं देखा था। करीम ने तो सारा भार

रजाकारों पर छोड़ रखा था। खुद तो वह ऐसे सफर कर रहा था, जैसे बड़े नेता दौरे पर जाते हैं।

जब फातिमा और हुस्नबानू नहीं मिलीं, तो करीम ने कहा, कि 'मैं वापस जाऊँगा, पर उसे इसकी इजाजत नहीं मिली। उसे मालूम हुआ कि इजाजत न मिलने पर, वह कहीं जा नहीं सकता था। जोहरा खुल कर रजाकारों को कोसने लगी, कि यह उन्हीं का काम है। वह करीम को भी बुरा-भला कहने लगी। अन्त तक दोनों लड़कियों का पता नहीं लगा। और इधर सब बालिग मर्दों को इस मिल में काम करना पड़ा। काम करने से करीम घबराता न था, पर कपड़े की मिल में काम करना उसे पसन्द न था। उसके मन में यह बात बसी हुई थी, कि ताँगे वाले का काम सबसे अच्छा है, क्योंकि बैठे-बैठे दुनिया भी देखो, और रोजगार भी करो। पर मजबूरी थी।

जोहरा एक दिन के बुखार में चल बसी। अब तो करीम के लिये बड़ी मुसीबत आई। घर का सारा भार उस पर आ पड़ा। उसके पहले के और बाद के सारे स्वप्न टूट चुके थे। मिल मालिक एक सिन्धी मुसलमान था। मजदूरों की हालत बुरी थी। उन्हें भारत की मिलों के मुकाबले में बहुत कम तनख्वाह मिलती थी। शिकायत करने पर कहा जाता था, कि पाकिस्तान अभी नया मुल्क है। अधिक शिकायत करने पर इसहाक की तरह मारे जाने का डर था। किसी को भी हिन्दुओं का आदमी कह कर मार डाला जा सकता था। कोई सुनवाई नहीं होती थी। पर भीतर-भीतर लोगों में असन्तोष सुलग रहा था।

एक दिन करीम ने स्वप्न देखा, पहले के जमाने का। जोहरा को देखा, हुस्नबानू और फातिमा, अकबर सभी दुबले हो रहे थे।

अगले दिन सुबह करीम चिन्तामग्न उठा। उसने बड़े बेटे से कहा, 'मैं तुम्हारी बहनों को खोजने जा रहा हूँ।' उसने दस छिपी हुई गिन्नियाँ उसे दीं। फिर कहा, 'बेटा, छोटों का ख्याल रखना। मैं पता लगा कर ही वापस आऊँगा।'

बच्चे रोने लगे। उसने समझाया। करीम वहाँ से रवाना होकर पहले के कैंप में पहुँचा। पर वह तो चिड़ियाखाना था। न तो वहाँ वे पनाहगजीन थे, न रजाकार। कुछ पता नहीं लगा। एकाध पुराने जान-पहचानी रजाकार मिल भी गये, पर वे इस तरह बात करने लगे, कि उसे शक हुआ, कि ये उसे कहीं गिरफ्तार न करा दें। वह उसी दिन रवाना हो गया, और किसी तरह दिल्ली में सेवाराम के यहां पहुंचा।

सेवाराम को देख कर ही वह समझ गया, कि इस बीच में उस पर भी अच्छी नहीं बीती। वह इन्हीं कुछ महीनों में बूढ़ा-सा हो गया था। करीम ने इस बीच में की सारी कथा सुनाई। सुन कर सेवाराम ने कहा, 'भई, मेरी हालत तुमसे कुछ अच्छी नहीं रही। तुम जब चले गये, तो तुम्हारे महाजन को किसी तरह पता लग गया, कि तुम्हारा घोड़ा मेरे पास है। बस, मैं एक मुसलमान को लूटने के लिये गिरफ्तार हो गया। घोड़ा और ताँगा जब्त तो हो गये, जेल से छूटने के लिये गायों को बेच कर दारोगा जी को पांच सौ घूस देना पड़ा। लड़का मिल में मजदूरी करता है। किसी तरह गुजारा हो जाता है। मैंने मुसलमानों को बचाया, और मुझ पर इलजाम यह है, कि मैंने मुसलमानों को लूटा। दारोगा का मुंशी जब तब संघ का मेम्बर बता कर चालान कर देने की धमकी देकर दस पाँच रुपये ले ही जाता है। अब तो मेरे पास कुछ भी नहीं रहा। अब की मुंशी आयेगा, तो गिरफ्तार हो जाऊंगा। अब तो जेल का डर निकल गया। जब बाप-दादों की निशानी गायें ही चली गईं, तो फिर क्या डर ?' उसके स्वर में कड़वापन था।

करीम ने पूछा, 'तांगा और घोड़ा कहाँ गया ?'

सेवाराम बोला, 'मुझे बताया तो गया, कि तुम्हारे पास भेजा जायगा, पर है वह तुम्हारे महाजन के पास। उसने बेच लिया होगा।'

'उसे कैसे मिल गया ?'

'अरे, भई, इन्हीं लोगों का तो राज है। फिर इन्हें क्यों न मिलेगा ? इन्हें क्या क्या कानून याद हैं। और कानून की भी क्या

जरूरत इन्हें ?'

करीम ने कहा, 'पाकिस्तान में भी यही हालत है। वहाँ जिस मिल में हमें काम करना पड़ता था, उसका मालिक मुसलमान ही है, पर जोंक की तरह हमारा खून चूसता है। मेरे चलने के दो हफ्ते पहले एक नौजवान ने एक दिन मजदूरों को बुला कर लेक्चर दिया था। सो अगले दिन से उसका पता नहीं लगा !'

'पता नहीं लगा ?' सेवाराम ने पूछा।

'हाँ, कहते हैं, फर्नेस में डलवा दिया। तब से किसी को कुछ हिम्मत नहीं पड़ती। सब सहे जाते हैं।'

दोनों बूढ़े बड़ी देर तक अपना-अपना दुखड़ा गाते रहे। कब सन्ध्या उतरी, कब रात हुई, उन्हें पता न लगा। उनके मनों में तो रात ही रात थी...गहरी अंधेरी रात, जिसका कोई ओर-छोर न था।

# इतिहास से बाहर

१६४२ के दिन तूफानी दिन थे। ब्रिटिश सरकार के पैर भारत में लड़खड़ा रहे थे। अभी तक जर्मन पूरे जोर पर थे। जैसे अगस्त-क्रांतिकारीगण जान हथेली पर लेकर तोड़-फोड़ तथा अन्य क्रांतिकारी कामों में लगे हुए थे, उसी प्रकार सरकार के भी पिट्ठू आन्दोलन को दबाने में दिन-रात एक कर रहे थे।

पुलिस तथा फौज को यह हिदायत थी कि वे किसी भी प्रकार आन्दोलन को दबायें। वे भी अक्षरशः, कम से कम संयुक्त प्रांत के पूर्वी जिलों में उसका पालन कर रहे थे। मि. स्मिथ और उनके हिन्दुस्तानी साथी ठाकुर बलवन्तसिंह इस सम्बन्ध में बहुत ख्याति प्राप्त कर चुके थे। जिस गाँव के पास तोड़-फोड़ होती, उस गाँव में पहुँच जाते और नादिरशाही मचाते। सब घरों की तलाशी ली जाती, जितने भी बालिग पुरुष मिलते, वे सब पकड़ कर बुला लिये जाते, और फिर उन पर बे-भाव की मार पड़ती। यदि कोई पुरुष गांव के बाहर गया होता तो उसके घर की स्त्रियों को उसके बदले बुलवाया जाता।

उनसे पूछा जाता कि तुम्हारे भाई, पति या बाप कहाँ हैं, जब वे इसका ठीक-ठीक उत्तर न दे पातीं तो उन्हें नंगी करके तरह-तरह से बेइज्जत किया जाता। मिस्टर स्मिथ तथा बलवन्तसिंह दोनों पक्के बदमाश थे। वे और जो कुछ करते उसका वर्णन यहाँ न करना ही अच्छा है।

अक्सर वे अपनी कारगुजारी दिखाने के लिये निर्दोष व्यक्तियों को जेलखाने भेज देते थे। पर इस प्रकार से आन्दोलन दब नहीं रहा था, बल्कि उभर ही रहा था। ऊपर से बार-बार यह शिकायत आ रही थी कि

वे क्या कर रहे हैं। तब एक दिन स्मिथ ने बलवन्तसिंह से कहा, 'डैम, ये लोग हमको चैन से रहने नहीं देते। इन तोड़-फोड़ वालों का कुछ पता ठिकाना तो है नहीं, अटकल से कहाँ तक इनको ढूँढ़ा जाय।'

बलवन्तसिंह बोला, 'हाँ हुजूर, काम तो बहुत मुश्किल है, मैं तो सोचता हूँ कि छुट्टी लेकर चला जाऊँ। हर वक्त जान पर खतरा, जिस पर ऊपर से ऐसी जवाब तलबियाँ आती हैं। मैं तो साहब परेशान हूँ।'

स्मिथ था तो अल्हड़ और बदचलन, पर था ब्रिटिश सरकार का पूरा भक्त। अप्रसन्न होकर बोला, 'तुम छुट्टी पर नहीं जा सकता। तुम छुट्टी पर जायगा तो हम इस्तीफा देकर बिलायत चला जायगा।'

बलवन्तसिंह ने मन ही मन सोचा कि तुम इस्तीफा दोगे तो कौन वहाँ जाकर राजगद्दी पर बैठ जाओगे, वहाँ भी तो फौज में भरती किये जाओगे। पर ऊपर से बोला, 'जब आपका हुकुम नहीं है, तो फिर कैसे जाऊँगा? मैं तो अपने को हुजूर का ही नौकर समझता हूँ।'

मिस्टर स्मिथ बहुत खुश हुए, पर अगले ही क्षण अपनी जिम्मेदारी को याद कर बोले, 'पर मिश्र का पता तो लगाना ही है।'

उस दिन से सचमुच दोनों विद्रोहियों की तलाश में रहने लगे। गाँव-गाँव में खुफियों का एक जाल-सा बिछ गया। इस इलाके में जो कांग्रेसी काम कर रहे थे, उनके नेता गुलाबराय थे। वे जब कहीं से निकल जाते थे तो पता लगता था कि वे इधर थे। उनके सम्बन्ध में यह मशहूर था कि कई तरह का भेष बना लेते हैं। कभी काबुलीवाला बन कर सूद वसूल के बहाने गाँव में आते थे तो कभी बिलकुल किसान बन कर हाथ में एक लट्ठ लेकर निकलते थे।

एक दिन मिस्टर स्मिथ आम के एक बाग में पड़ाव डाले हुए थे। संध्या का समय था। तंबू में नाच की तैयारी हो रही थी। पेग चल रहे थे। इतने में एक गाँव वाला घबड़ा कर बलवन्तसिंह के पास आया, और उसने उनके कान में कुछ कहा। एक मुहूर्त के लिये बलवन्तसिंह का चेहरा फक हो गया, पर उसने सिर हिलाकर उस गाँव वाले को चले

जाने के लिये कहा।

यद्यपि स्मिथ पेगों के कारण बिलकुल दूसरी दुनिया में पहुँच चुका था पर उसने यह देख लिया था कि एक आदमी आया, उसने बलवन्तसिंह के कान में कुछ कहा। और बलवन्तसिंह का चेहरा उतर गया।

वह तुरन्त तो कुछ न बोल सका, पर उसे उसी समय से कुछ ऐसा अनुभव होने लगा, कि रंग में भंग हो गया। उसका खिला हुआ चेहरा एकाएक गंभीर हो गया और अगले ही क्षण वह बलवन्तसिंह से बोला, 'क्यों सिंह वह आदमी कौन था ?'

बलवन्तसिंह ने बात बदलने की चेष्टा करते हुए कहा, 'कोई नहीं था हजूर, ऐसे ही था।'

स्मिथ ने कहा, 'फिर भी ?'

'ऐसे ही कोई नहीं था, रोज ऐसे कितने ही आया करते हैं, कह रहा था कि गुलाबराय पास के ही एक गाँव में है।'

सुनकर स्मिथ एकदम खड़ा हो गया। नशे के कारण उसके चहरे पर जो शिथिलता तथा निर्बोधता की छाप आ चुकी थी, वह जैसे जादू की लकड़ी से काफूर हो गई। अपनी पूरी ऊँचाई तक खड़े होते हुए उसने कहा, 'इतनी बड़ी बात कह गया, और तुमने मुझसे बताया नहीं?'

बलवन्तसिंह ने कहा, 'हजूर आप तो जानते हैं कि इन लोगों के कहने पर हम लोग कई बार गये, पर गुलाबराय का कहीं पता नहीं लगा। ये लोग तो ऐसे ही कह देते हैं।'

'....नहीं, नहीं, यह बात ठीक नहीं, आखिर हम लोग रुपया किस बात का पाते हैं? सौ दफे खबर मिलेगी तो सौ दफे जाना पड़ेगा। चलो।'

बलवन्तसिंह क्या करता, उठ खड़ा हुआ, पर अन्तिम प्रयास के रूप में गिड़गिड़ाता हुआ बोला, 'पर हजूर आज तो बिलकुल नया माल है ......।'

पर स्मिथ ने इस पर बिलकुल ध्यान नहीं दिया। बोला, 'नया माल है तो क्या, कोई भाग थोड़े ही जायगा, आकर देखा जायगा।'

थोड़ी ही देर में स्मिथ के नेतृत्व में २५ अस्त्रधारी पिकेटों की एक टुकड़ी उस गाँव की ओर रवाना हो गई, जहाँ गुलाबराय के ठहरने की खबर थी। इन लोगों ने जाकर एक मकान को घेर लिया। बलवन्तसिंह के दुर्भाग्य से अब की बार सचमुच क्रान्तिकारियों का सामना हुआ। दोनों तरफ से खूब झड़ाझड़ गोलियाँ चलीं, डेढ़ घंटे के बाद उधर की गोलियाँ शायद खतम हो गई या क्या हुआ, उधर से गोली चलना बन्द हो गया। फिर भी पुलिस वालों को हिम्मत न हुई कि आगे बढ़ें। वे सवेरा होने की प्रतीक्षा करते रहे और जब सबेरा हुआ तो वे बहुत पैर फूँक-फूँक कर उस मकान में घुसे। रात को तो ऐसा मालूम होता था कि इधर से कई बन्दूकें चल रही हैं। पर वे जो इस समय वहाँ पहुँचे तो वहाँ पर केवल एक ही आदमी मिला। यह भी आदमी बेहोश पड़ा था।

मकान खोजने पर कहीं एक भी बन्दूक का पता नहीं लगा। इससे यह साफ़ हो गया कि दूसरे क्रान्तिकारी न मालूम कैसे निकल गये, और इस व्यक्ति को शायद मरा समझ कर छोड़ गये। जब इस व्यक्ति को अस्पताल पहुँचा कर सनाख्त करवाया गया तो मालूम हुआ कि यह गुलाबराय तो नहीं, पर उसका एक महत्त्वपूर्ण साथी बख्तावरसिंह है।

भागे भूत की लँगोटी ही सही, इस कहावत का अनुसरण कर स्मिथ तथा उसके साथी इसी पर बहुत खुश हुए, कि अब की बार एक सही, आदमी को पकड़ तो लिया। बलवन्तसिंह को इस बात से कोई विशेष खुशी नहीं हुई। फिर भी स्मिथ को खुश करने के लिए वह बार-बार स्मिथ की तारीफ करता रहा। बलवन्तसिंह को केवल एक बात की इच्छा थी, वह यह कि बख्तावरसिंह किसी तरह होश में आवे, और फिर उसे मुखबिर बनाकर सारे षड्यंत्र का पता लगाया जाय। उसने स्मिथ को यह बात बताई।

सुन कर स्मिथ बहुत खुश हुआ। पर बलवन्तसिंह ने उनको अधिक खुश होने से मना किया, बोला, 'हजूर यों तो कोशिश की जायगी, पर ज्यादा उम्मीद न बाँधिये, क्योंकि ये साले बड़े जिद्दी होते हैं, जान दे

देते हैं, पर बात नहीं बताते।'

स्मिथ ने अकड़ कर घूँसा बाँधते हुए कहा, 'इस से हम सारी बात का पता लगा लेंगे।'

बलवन्तसिंह बोला, 'हजूर यह बात सच है कि आपके घूसे से बहुत काम बने, पर बख्तावर अगर जिन्दा भी हो गया, तो वह शायद कभी ही आपका घूँसा झेलने लायक हो ही पावे। जबड़े में एक और कँधे पर दो गोलियाँ लगी हैं।'

स्मिथ ने पूछा, 'डाक्टर क्या कहता है, कब होश में आयेगा।'

बलवन्तसिंह बोला, 'होश में आयेगा ही अभी यह तय नहीं है।'

बख्तावरसिंह डाक्टर रेवतीरमण के चार्ज में थे, वे अभी-अभी डाक्टरी पास करके दो साल पहले सरकारी नौकरी में आये थे। छात्रावस्था में वे अपने को एक उग्रवादी समझते थे ? नित्य अखबार भी पढ़ते थे। उन्हें ब्रिटिश राज्य से कोई सहानुभूति नहीं थी। पुलिस वालों से तो निश्चित रूप से चिढ़ थी, पर आफत के मारे वे जेल अस्पताल में ही तैनात थे। वे निष्काम रूप से अपना कर्तव्य पूरा करते थे।

बख्तावरसिंह के यहाँ आये दो दिन हो चुके थे। इन दो दिनों में स्मिथ और बलवन्तसिंह डाक्टर रेवतीरमण से कई बार मिल चुके थे। जब मिलते तब यही पूछते, 'डाक्टर साहब, बख्तावर को कब होश आयेगा?'

एक डाक्टर को जैसे उत्तर देना चाहिए, उसी प्रकार से डाक्टर रेवतीरमण उसका उत्तर देते थे। न तो आशा भंग ही करते थे, और न कुछ यही कहते थे कि होश आयेगा ही। तीसरे दिन सवेरे ही डाक्टर ने जो रोगी का चार्ट देखा, और नाड़ी पर हाथ रखा, तो उन्हें आशा हो गई कि अब रोगी होश में आवेगा। वे ऐसा सोच ही रहे थे कि स्मिथ और बलवन्तसिंह जेल के फाटक पर पहुँच गये।

डाक्टर रेवतीरमण ने कुछ झुंझलाकर कहा, 'आपको मैं सारी परिस्थिति पहले ही बता चुका। आखिर आप तो उसे पकड़ ही चुके,

कब आपको उसमें इतनी दिलचस्पी क्यों है ? मैं तो समझता हूँ वह जी जायेगा।'

बलवन्तसिंह ने कहा, 'आपने अच्छी बात पूछी। हम लोगों की उसमें दिलचस्पी यह है कि वह ठीक होकर हमें सारे षड्यन्त्र के सम्बन्ध में खबर बतावे।'

'...कैसे ?'

'...मुखबिर बन कर।'

'....अच्छा यह बात है।'

बलवन्तसिंह ने कहा, 'तो हम लोग शाम को आवें ?'

डाक्टर ने रुखाई के साथ कहा, 'यह आपका ही घर है, मैं पहले ही बता चुका, मैं कुछ निश्चित समय नहीं दे सकता। यों आप जाकर बड़े साहब से पूछ सकते हैं। उन्हीं का इलाज चल रहा है।'

स्मिथ और बलवन्तसिंह चले गये। डाक्टर रेवतीरमण अस्पताल में लौट गये, और फिर से बख्तावरसिंह की नाड़ी देखी, तो पहले से अवस्था अच्छी मालूम हुई।

दिन में २ बजे बख्तावरसिंह को होश आया। डाक्टर रेवतीरमण वहीं पर बैठे हुए थे। वे जानते थे कि अब होश आने वाला है।

होश आते ही बख्तावरसिंह ने पूछा कि वह कहाँ है ! डाक्टर ने उसे सारी बात बताई।

बख्तावरसिंह ने पूछा, 'मैं कब अच्छा हो जाऊँगा ?'

डाक्टर ने कहा, 'दो महीने लगेंगे ही।'

बख्तावरसिंह ने दुखी होकर कहा, 'दो महीने ?'

'....हाँ।'

'...फिर क्या होगा ?'

'.. मुकद्दमा चलेगा ?'

सुनकर बख्तावरसिंह दुखी हो गया। डाक्टर ने कहा, 'पर आप चाहें तो छूट सकते हैं।'

बख्तावरसिंह का चेहरा चमक उठा। पूछा, 'कैसे ?'

डाक्टर कुछ झिझका, फिर बोला, 'आप पुलिस को सारी बात बतावें।'

बख्तावरसिंह कुछ चौंक-सा पड़ा। बोला, 'आप एक हिन्दुस्तानी होकर ऐसा कहते हैं ?'

'क्यों नहीं ? मैं ब्रिटिश सरकार का नमक खाता हूँ।'

थोड़ी देर बाद डाक्टर ने पूछा, 'तो आप क्या करेंगे ? सब बातें बता देंगे न ?'

बख्तावर बोला, 'सब बातें हैं ही कहाँ। क्रांति तो बुझ चुकी है, कुछ चिनगारियाँ इधर-उधर भटक रही हैं। उनके भकटने से कुछ फायदा नहीं। देखिये न मैं मर कर बचा हूँ।'

'...तो ?'

'...मैं कुछ सोच नहीं पा रहा हूँ। क्रांति अब मर चुकी, मेरे जेल में सड़ने से कुछ हुआ नहीं जाता।'

डाक्टर समझ गये कि बख्तावरसिंह स्मिथ के सामने नहीं टिकेगा। इस समय जो थोड़ा बहुत विवेक का अंश मौजूद है, वह अधिक देर नहीं टिकेगा।

डाक्टर की ड्यूटी खतम हो रही थी। नर्स को सब समझा कर चले गये कि यदि पुलिस वाले आयें तो उनसे यह न कहा जाय कि रोगी होश में आ गया। नहीं तो वे आज ही जिरह शुरू करेंगे, और रोगी फिर बेहोश हो जायगा। नर्स ने ऐसा ही किया। रात को डाक्टर साहब दस बजे ड्यूटी पर आये। मालूम हुआ कि उसका दिल पहले से भी अधिक कमजोर हो गया है, और वह सबेरे ही बयान देना चाहता है। डाक्टर ने सोचा इस व्यक्ति को जिंदा रखना मानो बीसियों देशभक्तों को फँसाना है। डाक्टर बड़ी देर तक बाहर जाकर चहल-कदमी करते रहे। फिर उन्होंने डिस्पेंसरी में जाकर दो औंस ब्रांडी पी ली। इसके बाद वे एक पुड़िया लेकर बख्तावरसिंह के पास पहुँचे और अगली दवाई के

समय दवा के साथ उस पुड़िया को खिला दिया। इस पुड़िया में जहर नहीं था बल्कि एक तेज दवा मात्र थी, जिसे कमजोर होने के कारण बख्तावरसिंह झेल नहीं सका, और वह फिर बेहोश हो गया। सबेरे तक उसके प्राण पखेरू उड़ गये।

इस प्रकार डाक्टर रेवतीरमण ने वह काम किया, जिसके कारण उधर का आन्दोलन नेताओं के छूटने तक नहीं दबा। इतिहास इस देशभक्त के सम्बन्ध में कभी कुछ नहीं जानेगा।

# कलाकार का जगत

सितार बजाने में रहमान खां अपने युग के सब से बड़े कलाकार समझे जाते थे। दूर-दूर से लोग उनकी शागिर्दी के लिये आते थे, जिनमें से अधिकांश साल छः महीने में ही निराश होकर चले जाते थे। रहमान खां किसी को अपने मुँह से इनकार नहीं करते थे, पर उनका सिखाने का तरीका ही कुछ ऐसा था कि लोग ऊबकर भाग जाते थे। फिर भी कुछ लोग रह ही जाते थे, और इस फन में कमाल हासिल करते थे।

पहले कोई बाहर से आता था तो तीन-चार महीनों क लिये उस्ताद उसे सितार पकड़ने ही नहीं देते थे। कहते थे, 'बैठ कर सुनो। सीखने में क्या लगता है? पहले कान तो पैदा करो, कान पैदा होने पर फिर तो बात की बात में माहिर हो जाओगे।' कह कर उसकी तरफ से मुँह फेर लेते थे। मानो उसका अस्तित्व ही समाप्त हो गया। उस दिन से वे फिर उसकी तरफ आँख उठाकर भी नहीं देखते थे।

जो छात्र गरीब होता था, उस्ताद उसके लिये रूखे-सूखे का प्रबंध कर देते थे। उनकी आमदनी को देखते हुए स्वयं भी वे रूखा-सूखा ही खाते थे। पर कसरती आदमी थे, लड़कपन से अच्छा खाते थे, इस कारण थोड़ा घी-दूध तो जरूर लेते थे।

राजाओं, महाराजाओं, रईसों के यहाँ से उनको बुलावा आता था। जहाँ चाहते थे वहाँ जाते थे, नहीं तो इनकार कर देते थे। पारिश्रमिक तथा सफर खर्च मुँह माँगा मिलता था। जिस इलाके में एक दिन के लिये भी चले जाते, चार दिन बाद दिखाई पड़ता कि वहाँ से दो-चार शिक्षार्थी चले आ रहे हैं। कभी-कभी शिक्षार्थी धनी भी होते थे, पर

उस्ताद के यहाँ धनी और गरीब में कोई फर्क नहीं था। सबको, गर्मी हो या जाड़ा हो, बिछी हुई दरी पर बैठना पड़ता था। हाँ, छात्र धनी होता था तो उस्ताद उसके लिये कोई प्रबंध नहीं करते थे।

कई राजाओं ने (उस समय तक राजा बिल्कुल स्वेच्छाचारी थे, और राज्य की सारी आमदनी मानो उनकी जेब खर्च के लिये थी) उन्हें बुलाया कि वे जाकर उनके दरबार में रहें, पर उन्होंने स्वीकार नहीं किया। इस बात से उनकी बीबी सकीना उन पर बहुत नाराज रहती थी, पर उस्ताद ने अपनी टेक नहीं छोड़ी थी। पर अन्त में न मालूम क्या बात हुई कि बड़े से बड़े राजाओं का न्यौता ठुकरा कर वे एक छोटे राजा के यहाँ आकर रहने लगे। पर उन्होंने साफ कह दिया कि दरबार से उन्हें कोई मतलब नहीं। जी आयेगा बजायेंगे। यदि राजा को शौक होगा तो आकर सुनेगा। उनके साथ यह तय हुआ कि सारे सागिर्दों का खर्च उन्हें उठाना पड़ेगा तब से वे इसी राज्य में थे। उस समय तक रहमान खां उतने प्रसिद्ध नहीं हुये थे। इसी राज्य में आकर उनकी कला चमकी, और ख्याति सारे भारत में फैली। सौ के करीब छात्र डटे ही रहते थे।

उस्ताद प्रति दिन मुह-हाथ धोकर कुछ मामूली सी कसरत करते थे। इसके बाद थोड़ा बहुत नाश्ता पानी करके वे बाहर आते थे। वहाँ पर वे घंटा सवा घंटा तक बजाते थे। छात्रों के लिये यह आवश्यक था कि वे इस समय उपस्थित हो। वहाँ कोई हाजरी नहीं ली जाती थी, पर उस्ताद की आँखें बड़ी तेज थीं। उनसे कोई बच नहीं सकता था। जब वे बजाते थे तो उनका लड़का गफूर भी छात्रों में आकर बैठ जाता था। वर्षों से वह ऐसा करता था। फिर उसने बजाना शुरू किया। उस्ताद उसे सब छात्रों के साथ ही शिक्षा देते थे। यद्यपि गफूर उनकी आँखों का तारा था, पर वे कभी इस बात को प्रकट नहीं करते थे। केवल सिखाने के समय ही नहीं, किसी समय भी वे गफूर को यह जताते नहीं थे, कि वे उससे प्यार करते हैं। यों ही मामूली रूप में तो वे सबसे प्यार करते थे।

इस कारण गफूर माँ की तरफ ज्यादा जाता था। पर उसे भी कला से बहुत प्रेम था। जिन दिनों वह अभी किशोर ही था, वह सितार लेकर बाहर कहीं निकल जाता था, और घन्टों विभोर होकर बजाता था। सकीना को यह बात बिलकुल पसन्द नहीं थी। वह चाहती थी कि गफूर पढ़-लिख कर किसी राजा के दरबार में दीवान वगैरह हो जाय। पति की कला को न तो वह समझती थी, और न उसे गाना-बजाना कुछ विशेष भाता था। जब गफूर सितार बजाने के बाद लौटता था, तो उसकी आँखें लाल होती थीं और चेहरे पर एक दूसरी दुनिया की छाप होती थी। बिलकुल वही छाप जो उस्ताद के चेहरे पर करीब-करीब हर समय बनी रहती थी। सकीना को बराबर यही डर था, और उसकी आँखों के सामने वही बात हो रही थी जिससे उसे चिढ़ थी।

उधर उस्ताद गफूर के रंग-ढंग से खुश होते थे। कई बार तो वे चुपके-चुपके लड़के के पीछे हो जाते थे, और जहाँ वह बैठ कर बजाता था, उसके पास छिप कर उसे सुनते थे। उसमें जो गलतियाँ होती थीं, उसे वे अगले दिन सब के सामने यों ही बिना किसी का उल्लेख किये बजाते थे। इस प्रकार वे अपने लड़के पर देख-रेख रखते थे। वे चाहते थे कि उनका लड़का उन्हीं की तरह कलाकार हो, बल्कि उनसे भी बड़ा। पर सकीना हर समय नाव को उल्टी तरफ खेने की कोशिश करती थी। इस से गफूर बड़ा भ्रम में पड़ जाता था।

मानो आदर्शों के इसी द्वन्द से छुटकारा पाने के लिये वह जब तब घर से भाग जाता था। उस्ताद ऐसे मौकों पर बहुत बेचैन हो जाते थे, पर ऊपर से वे इस बेचैनी को आने नहीं देते थे। वे ऐसा व्यवहार करते थे मानो लड़के के भाग जाने से उन्हें कोई वास्ता नहीं है। वे इस बेचैनी को अपने बजाने में ढाल देते थे। ऐसे समय पर वे रात को देर-देर तक बजाते थे। जो लोग उसे सुनते थे उन्हें नींद नहीं आती थी, वे बिस्तरों पर करवटें बदलते रह जाते थे। बजाते-बजाते वे बिलकुल बेसुध से हो जाते थे। सामने रखा हुआ गरम दूध का बड़ा-सा गिलास रखा-

ठंडा हो जाता था। आकाश के तारे करवट बदलते-बदलते आसमानी तोशक में न मालूम कहाँ पहुँच जाते थे। सकीना कई बार आवाज देकर पता नहीं सो जाती या यों ही चुप पड़ी रहती। जब सितार बजाते-बजाते हाथ थक जाते, तब उस्ताद जाकर लेट जाते। गफूर को याद कर एक लम्बी साँस भरते, और फिर सो जाते।

यद्यपि उस्ताद गफूर की तलाश नहीं करवाते थे, पर सकीना इस पर जी-जान से जुट पड़ती थी। सब शागिर्द इधर-उधर फैल जाते। राजा साहब को खबर जाती। एक दिन गफूर ढूँढ़ निकाला जाता या वह स्वयं आ जाता। उस्ताद अपने स्वभाव के अनुसार उसे कुछ भी न कहते, और फिर दैनिक जीवन चलने लगता। उस्ताद तो अपने रागों में डूबे रहते। पर सकीना गफूर को समझाती, पर उस समझाने का कोई नतीजा नहीं होता था। गफूर में कला के प्रति प्रेम था, पर वह अपने पिता की तरह निस्पृह नहीं था। उसे जीवन की और चीजें भी चाहिये थीं।

इसी प्रकार सालों बीत गये। गफूर अपने पिता के सब छात्रों से अधिक प्रतिभाशाली निकला। पर उस्ताद ने एक दिन भी यह बात अपने मुँह से नहीं कही। पर वे इसे जानते थे। बजा तो सभी छात्र लेते थे, और सब पर रहमान खां की अमिट छाप पड़ चुकी थी, पर गफूर जिस सफाई से तथा जिस बारीकी से अपने पिता की कला को मूर्त करता था, वह किसी और में नहीं पाया गया। केवल यही नहीं उस में कुछ मौलिकता भी थी, जिसे सुन कर उस्ताद भी अवाक रह जाते थे। अकेले में बैठ कर उस्ताद ने अपने बेटे के ढंग को सितार पर उतारा तो उन्हें बड़ी गुदगुदी मालूम हुई।

सकीना ने आजीवन संग्राम के बाद शस्त्र टेक दिये थे। वह समझ चुकी थी कि गफूर उसके बाप ही की तरह होगा। नहीं बाप से भी खराब। इसलिये सकीना चाहती थी कि इसकी जल्दी से शादी कर दी जाय। उसने उस्ताद से दो-एक बार इस सम्बन्ध में कहा भी, पर उस्ताद तो जैसे ऐसी बातों की तरफ से कान में रुई डाले हुये थे। सुनकर भी नहीं

सुनते थे । अन्त में सकीना ने समझा कि यह काम उसे ही करना है। पर लड़के के सामने प्रस्ताव रखा गया तो वह राजी नहीं हुआ । कारण पूछा गया तो उसने कोई उत्तर नहीं दिया। सकीना डरी कि कहीं भाग न जाय इसलिये चुप रही।

सकीना ने इन सारी बातों का गुस्सा मौके से उस्ताद पर उतारा। और उस्ताद ने अपने स्वभाव के अनुसार इसका कोई उत्तर नहीं दिया। पर उत्तर दे या न दे, वे चिन्तित रहने लगे, इधर गफूर किसी लड़की के प्रेम में पड़ चुका था, और पहले जैसे भागकर जहाँ मन चाहता था वहाँ चला जाता था, वैसा न कर उसी रिश्तेदार के यहाँ जाता था जिसकी लड़की से उसका प्रेम हुआ था। साल छः महीने में सकीना को इसका पता हुआ। और सकीना ने इस पर रंग चढ़ाकर उस्ताद से कहा। उस्ताद ठीक-ठीक समझ नहीं पाये कि मामला क्या है। उन्होंने जहाँ तक बुद्धि दौड़ाई इसमें कोई खराब बात नहीं पाई, पर सकीना की बुद्धि पर विश्वास न होने पर भी उसकी विषग्र बुद्धि पर उन्हें विश्वास था। इस कराण वे समझे कि कुछ बहुत खराब बात है। उस्ताद भी कभी जवान थे, पर वे कभी प्रेम-वेम के झगड़े में नहीं पड़े थे। उनका बस एक ही प्रेम था, संगीत प्रेम। दूसरे किसी प्रेम से उनका कोई साबका नहीं पड़ा था। रही गृहस्थी सो सब लोग करते हैं, इसलिये उस्ताद भी गृहस्थी करते थे। उनकी गृहस्थी बहुत कुछ ढोल गले पड़ गया, सो बजावें नहीं तो क्या करें इस प्रकार का था। हाँ, लड़के से वे प्रेम करते थे, पर इस बात को वे अपने निकट भी स्वीकार नहीं करते थे।

उस्ताद नाराज तो हुये, पर नाराजी प्रकट करने का कोई मौका उन्हें नहीं मिला। बात यह है कि गफूर वातावरण को बिगड़ते हुये देखकर भाग निकला। सकीना के क्रोध ने इस भागने में ईंधन का काम किया। यथा रीति सकीना ने उस्ताद पर फिर सारा गुस्सा निकाला। और उस्ताद उसे पीकर रात को देर तक सितार बजाने लगे। जब बजाते-बजाते उनका अशान्त मन शान्त होता, शरीर थक जाता, तो वे जाकर सो जाते। दूध

का गिलास उसी तरह पड़ा रहता।

पर उस्ताद ने निश्चय कर लिया कि अब की बार कुछ करना जरूर है। उन्होंने सोचा ऐसे काम नहीं चलेगा। उनके दैनिक कार्यक्रम में कोई फर्क नहीं पड़ा। यद्यपि कहीं खास बुलावा आता तो चले जाते, नहीं तो सागिर्दों को शिक्षा देना जारी रहता। पहले जैसे होता था कि गफूर के भागने पर ही आधे शागिर्द उसकी तलाश में निकल पड़ते थे, अब वैसी कोई बात नहीं होती थी, क्योंकि सकीना को भी मालूम रहता था कि वह कहाँ गया है, और सागिर्दों को भी इसका पता था।

कई दिनों बाद गफूर लौटा। अब की बार वह अपने साथ एक प्यारी-प्यारी-सी बड़ी-बड़ी आँख वाली दुलहिन भी ले आया था। सकीना पहले तो देख कर आग बबूला हो गई, पर जब इस बात का पक्का सबूत मिल गया कि गफूर इस लड़की से बकायदा निकाह कर चुका है, तो वह चुप रही। अब मुसीबत उस्ताद को लेकर हुई। सकीना इस बीच में उस्ताद को इतना भर चुकी थी, कि उसे डर था कि उस्ताद असली बात नहीं समझेंगे, और ख्वामख्वाह झगड़ा करेंगे, यद्यपि उस्ताद बिलकुल निस्पृह व्यक्ति थे, पर जब उनका क्रोध उमड़ता था तो बहुत उमड़ता था। सकीना को मालूम था कि अब की क्रोध उमड़ चुका है। इस कारण माँ-बेटे में यह तय हुआ कि गफूर तथा उसकी दुलहिन की बात को सम्पूर्ण रूप से गुप्त रखा जाय। मकान इस प्रकार का था कि इस बात की गुँजाइश भी थी। इसके अलावा उस्ताद की आदतें बंधी हुई थीं। जिन कमरों में वे रोज जिस समय जाते थे, उसके अलावा वे कभी किसी और कमरे में नहीं जाते थे।

उस्ताद का उसी प्रकार रात में सितार बजाना जारी रहा। एक दिन बिलकुल विभोर होकर सितार बजा रहे थे, इतने में उन्होंने कुछ ऐसा अनुभव किया जैसे दो सितार एक साथ बज रहे हों, और ऐसा मालूम हुआ जैसे उन दोनों सितारों को वे ही बजा रहे हैं। पहले तो उन्होंने इसे भ्रम समझा, पर जब कई बार यह भ्रम हुआ तो उन्होंने बजाना

बन्द कर दिया। तब भी दूसरा सितार बजता रहा। उनकी भौंहों पर बल आ गये। बिल्कुल हुबहू जैसे वे ही बजा रहे हों। तो क्या कोई रेकार्ड है। नहीं यह रेकार्ड तो नहीं है। बिल्कुल सजीव है, बल्कि उनसे भी सजीव। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। पास ही से आवाज आ रही थी।

दो तीन कमरे चल कर वे जिस कमरे में पहुँचे वहाँ गफूर सितार बजा रहा था। उसे कुछ सुध-बुध नहीं थी और सामने एक सुन्दरी नवयुवती बैठी हुई थी। वह भी विभोर थी। उस्ताद को ऐसा मालूम हुआ जैसे वह साक्षात संगीत की देवी हो। उस्ताद ने संगीत की देवी की जिस रूप में कभी कल्पना की थी, यह मानो उसी का मूर्त रूप था। वे पुलकित हो गये। पर हफ्तों से क्रोध का जो पाठ उन्हें पढाया गया था, उसने धीरे-धीरे सर उठाया। पर कितना भी क्रोध करें वे संगीत का अपमान नहीं कर सकते थे। उन्होंने अन्त तक गफूर के सितार वादन को सुना। फिर वे इस लोक में उतरे तो उन्हें स्मरण हो आया कि लड़के को डाटना है। लड़की की तरफ देखकर एकाएक बोल उठे, 'यह देवी कौन है?'

गफूर ने एकाएक पिता को सामने आते हुये देखकर डरते हुये कहा, 'अब्बाजान, यह आपकी पतोहू है।'

उस्ताद की कुछ समझ में नहीं आया कि क्या कहना चाहिये। पर इतना उन्हें स्मरण रहा कि क्रोध करना चाहिये। तड़क कर बोले, 'पतोहू है तो वह यहाँ रहे, पर तुम बदतमीज हो, बदमाश हो, माँ की बात नहीं सुनते हो घर से निकल जाओ।......'

गफूर ने तर्क करने की चेष्टा की, यह समझाने की चेष्टा की कि उसका बाकायदा निकाह हुआ है, कोई इसमें खराब बात नहीं है। पर उस्ताद का क्रोध शान्त नहीं हुआ, बोले, 'निकाह हुआ है तो तेरा क्या? वह घर में रहेगी, तू घर से निकल जा।'

शोर-गुल सुनकर सकीना दौड़ी आई। दूसरे लोग भी आये। पर उस्ताद वही बात कहते रहे, 'तू घर से निकल जा।' यह जैसे उन-

का अंतरा हो गया।'

सकीना बीच में पड़ी। जब उस्ताद फिर भी नहीं माने, तब वह उस्ताद से भी अधिक नाराज हुई। बड़ी चखचख रही। गफूर की बीबी कुलसम घबड़ाकर सास का दामन पकड़ कर खड़ी हो गई। जब उस्ताद ने देखा कि सभी उनके विरुद्ध है, तो अपने कमरे में चले गये। उनकी कुछ समझ में नहीं आया कि आखिर यह क्या बात है, कि सकीना ही उसे समझाती रही कि लड़का बिगड़ रहा है, और अब जब वे बिगड़े, तो वे लोग सब उनके विरुद्ध हो गये।

उस दिन से उस्ताद गृहस्थी में और भी कम दिलचस्पी लेने लगे। पर अब वे रात को देर तक सितार नहीं बजाते थे। सारी बातों को न समझने पर भी उनके मन में एक शान्ति की भावना छा गई।

# न्याय की गति

जब दुखहरण हवालात में बन्द कर दिया गया, तब उसे होश आया और मालूम हुआ कि उसने क्या किया है ? अब तक तो वह जैसे नशे में था, सब कुछ आवेश में करता गया था। वह दो पहर के समय एका-एक किसी काम से घर आया, तो उसने देखा कि उसके खपरैल वाले घर का दरवाजा भीतर से बन्द है। समझा, कि उसकी स्त्री सुमित्रा भीतर सो रही होगी। उसने बाहर से दरवाजे पर धक्का दिया, पर वह नहीं खुला। फिर समझा, कि गहरी नींद में होगी, सो उसने दरवाजे को भड़भड़ाया। जब फिर भी दरवाजा नहीं खुला, तब उसे शक हुआ कि कहीं सुमित्रा ने आत्म-हत्या तो नहीं कर ली। शहर की यह बीमारी गाँव में भी काफ़ी फैल चुकी थी। पर सुमित्रा की आत्म-हत्या करने का कोई कारण तो था नहीं। इस प्रकार वह सोचता गया, और दरवाज़ा पीटता गया। अंत में जब उसने देखा, कि ऐसे काम नहीं चलेगा, तो दरवाज़े पर बहुत जोर का धक्का मारा। दरवाज़ा झनझना कर गिर पड़ा।

उसने सामने जो दृश्य देखा, उसे देख कर एक बार तो उसे अपनी आँखों पर विश्वास ही नहीं हुआ। सुमित्रा एक कोने में खड़ी थर-थर कांप रही थी। उसके कपड़े-लत्ते अस्त-व्यस्त थे, आँखें लाल हो रही थीं, और चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। दुखहरण कुछ समझ नहीं पाया, कि मामला क्या है इतने में उसी कमरे के दूसरे कोने से उसका पड़ोसी रामचरण तीर की तरह निकला, और बिना कुछ कहे-सुने खुले दरवाजे से निकल गया। एक सेकेंड के सौएं हिस्से में ही वह कांड हो गया। पर इससे भी फुर्ती से जो कांड हुआ, वह यह था, कि दुखहरण

ने दीवार पर टँगे हुये फर्से को उतार लिया, और लपक कर रामचरण के पीछे दौड़ा।

फिर उसके बाद क्या हुआ? यह याद करने पर ही उसे याद आया। एक वार में ही उसने रामचरण को गिरा दिया, और दूसरे वार में तो वह खतम ही हो गया। अब वह अपनी स्त्री को मारने के लिए चला। पर तब तक गाँव वाले इकट्ठे हो गये थे। फिर वह जहाँ सुमित्रा को छोड़ गया था, वह वहाँ मिली भी नहीं। लोगों ने उसे पकड़ लिया, उसका फर्सा छीन लिया गया, और थोड़ी ही देर में वह थाने में बंद कर दिया गया। वहीं पर उसे सारी बातें एक-एक कर के पहले बिना तरतीब के और बाद में तरतीब से याद आईं। हल और बैल तो खेत में ही छूट गये। वह तो एक रस्सी लेने घर आया था। हल एक जगह से कमजोर हो गया था, सो उसे वहाँ बाँधना था। और जरा देर में यह सारा कांड हो गया। उसके मन में हल बैल के लिये चिंता होने लगी, पर...नहीं, अब कोई चिंता नहीं रही। जब कुछ भी नहीं रहा, तो वह हल, बैल की चिंता क्यों करे? एक बार उसने सोचा, कि सुमित्रा कहाँ गई? पर फिर सोचा कि जब सुमित्रा ने उसे इस प्रकार धोखा दिया, तो अब उसे किसी से मतलब नहीं।

पुलिस तथा अदालत के सामने दुखहरण ने सारी बातें स्वीकार कर लीं। छोटी अदालत ने उसे सेशन के सुपुर्द कर दिया। अब मुकद्दमा सेशन में गया, तो वह मिस्टर सेठ नामक एक अधेड़ उम्र के जज के सामने पेश किया गया। न मालूम क्या बात हुई कि शुरू से ही जज साहब ने अभियुक्त के प्रति बहुत विरोधी रुख धारण कर लिया। दुखहरण को सरकार की तरफ से एक वकील मिले, जो अपना काम बहुत सच्चाई के साथ कर रहे थे। वे बार-बार जज साहब के सामने इसी बात को रखते थे, कि अभियुक्त ने जो कुछ किया, वह बहुत भारी उत्तेजना के वशीभूत हो कर किया। वकील का यह कहना केवल भावना के प्रति एक निवेदन मात्र ही नहीं था, कानून की दृष्टि से भी यह एक उचित कारण था।

पर जज मिस्टर सेठ इस बात को जब भी सुनते, तो झुँझला जाते।

मुकद्दमें के आरम्भ में ही मिस्टर सेठ ने एक दिन सफाई के वकील को डाँट दिया। बोले—"यह क्या आप बार-बार 'उत्तेजनावश, उत्तेजनावश' कहते हैं?"

सफ़ाई के वकील ने कहा—"हुज़ूर, सुमित्रा उसकी ब्याही हुई स्त्री थी। जब उसने उसे रामचरण के साथ ऐसी आपत्तिजक अवस्था में देखा, तो........"

बीच में ही बात काट कर, मिस्टर सेठ बोले—"तो क्या हुआ? इससे उसे यह हक थोड़े ही हो गया, कि वह उसे मार डाले? अब मनुष्य गुफा में रहने वाले नहीं रहे, अपने पूर्वजों से आगे बढ़ चुके हैं।" कह कर वे हँस पड़े।

उनके मन में इस समय अपने वर्त्तमान जीवन की कुछ बातें घूम गईं। बहुत दिनों से वे अपने एक मित्र श्री लाल की स्त्री से फँसे हुए थे। यह नहीं, कि वे अपनी स्त्री को प्यार नहीं करते थे। पर वह पाँच बच्चों की माँ थी। घर के काम-काज तथा रिश्तेदारी आदि से ही उसे फुर्सत नहीं मिलती थी। और लड़कों, लड़कियों के लिये वर, वधू खोजने का काम भी था। सो सेठ साहब क्लब जाया करते थे, और वहीं पर उन्होंने इस अनमोल रत्न श्रीमती लाल को, ढूंढ़ निकाला था। और श्रीमती लाल के साथ उन्होंने अपने को भी ढूंढ़ निकाला था।

अदालत में जब भी रामचरण की बात सामने आती थी, तो वे अपनी बात सोचे बिना नहीं रहते थे। वे दुखहरण जैसे व्यक्तियों से सचमुच घृणा करते थे। एक दिन उन्होंने अभियुक्त को कह भी दिया—"देखो, जी, अगर तुमने यह देखा, कि तुम्हारी बीबी ने तुम्हें धोखा दिया, तो तुम उससे अलग हो जाते, या दूसरी शादी कर लेते। पर यह क्या अहमकपन था, कि फरसा लेकर उसके प्रेमी को खत्म कर दिया?" कह कर, उन्होंने मुँह बना लिया। सचमुच सभ्यता के इस युग में ऐसे लोग बड़े मिसफिट है!

जज साहब यों तो अदालत में अभियुक्त से बोल रहे थे, पर वास्तव में यह उपदेश वे अपनी चहेती के पति श्री लाल को दे रहे थे, जिससे उन्हें कुछ-न-कुछ डर तो बना ही रहता था। जज साहब इतने मूर्ख नहीं थे, कि श्री लाल के घर जाए, जैसा रामचरण ने किया था। वे तो अपनी प्रेयसी को किसी एकान्त स्थान पर अत्यन्त गुप्त रूप से, ताकि कोई इस प्रकार का खतरा पेश न आये बुला लेते थे। अभी-अभी यह महिला स्वास्थ्य-सुधार के बहाने नैनीताल पहुँची थी। उसके पति उसके साथ न जा सके थे। पर जज साहब छुट्टी ले कर गये थे, और पास ही के बँगले में टिक गये थे। वे भी स्वास्थ्य सुधारने के बहाने गये थे। और उनके घर के लोग समझते थे, कि वे किसी सरकारी काम से बाहर कमीशन पर गये हैं। पर मान लीजिये, कि उनकी प्रेयसी का पति कहीं नैनीताल पहुँच जाता, तो कितनी असुविधा होती। और यही नहीं, कहीं फरसा ले कर पहुँचता, तो ? नहीं, यह तो अकल्पनीय है।

इसी कारण जब सुमित्रा गवाही देने आई, तो जज साहब ने भरसक यही प्रयत्न किया, कि वह यही कहे कि कोई उत्तेजना उत्पन्न करने वाली परिस्थिति नहीं थी। उनका इशारा पा कर, इस्तगासे का वकील भी यही प्रमाणित करने की चेष्टा कर रहा था कि उत्तेजना की कोई बात नहीं थी, सुमित्रा और रामचरण बाहर खड़े बात कर रहे थे, और दुखहरण ने उन पर ख्वामख्वाह हमला कर दिया। सुमित्रा के लिए भी इस प्रकार की गवाही देना आसान था। सफाई पक्ष के वकील ने फिर भी कुछ काम बना ही लिया। पर जज साहब अंत तक इसका विरोध करते रहे। दुखहरण तो सारी कार्रवाई के प्रति उदासीन-सा हो रहा था; पर जब सुमित्राने भरी अदालत में यह कहा, कि वह खड़ी हो कर रामचरण से बात कर रही थी, और दुखहरण ने आ कर रामचरण पर पीछे से फरसे से हमला कर दिया, तो उससे रहा नहीं गया। वह एकाएक चिल्ला कर, बोल पड़ा—"धर्म से बोल, कि जो कुछ तू कह रही है, वह सच है ?"

उसकी डाँट सुन कर, सुमित्रा कुछ घबरा-सी गई। पर फौरन

सरकारी वकील ने उसे सँभालते हुये, कहा—"तुम इसकी मत सुनो। मेरे सवालों का जवाब दो।"

फिर उसने अदालत से कहा, कि गवाह को अभियुक्त की धमकियों से बचाया जाय। इस पर जज साहब ने कठघरे की तरफ से संतरियों को इशारा किया, और उन लोगों ने दुखहरण को जबर्दस्ती पकड़ कर बेंच पर बैठा दिया। जज साहब ने रुखाई के साथ कहा—"दुखहरण, तुम अगर गवाह को छेड़ोगे, तो तुम्हें हथकड़ी पहना दी जायगी। तुम्हारे वकील मौजूद है। जो कुछ कहना हो, उन्हीं से कहो।"

इस प्रकार न्याय का गला घोंटा गया। दो महीनों तक मुकद्दमा चलता रहा। जज साहब ऐसे समाज-विरोधी व्यक्ति को फाँसी देना चाहते थे; पर वे जानते थे, कि ऊँची अदालत में फाँसी की सजा नहीं रह सकती, इसी कारण उन्होंने दुखहरण को काले पानी की सजा दी।

इसके बाद दुखहरण एक सेन्ट्रल जेल में भेजा गया, क्योंकि बड़ी मियाद के कैदियों को जिला जेलों में रखने का नियम नहीं है। वहाँ पर उसने एक दूसरी ही दुनिया पाई। जेलर एक एंग्लो-इंडियन था। वह इतना दुष्ट था, कि उसके नाम से सारे कैदी थर-थर कापते थे। न जाने कितने कैदियों को उसने पीट-पीट कर मार डाला था। मार कर वह डाक्टर से मिल कर यह लिखवा दिया करता था, कि कैदी न्यूमोनिया या किसी अन्य भयानक रोग से मर गया। कोई पैसे वाला आदमी यदि जेल में फँस कर आ जाता था, तो वह छल, बल, कौशल से उसकी सारी जायदाद दुह लेता था। जेल में उसके कुछ एजेंट लगे हुये थे, जो उसे बताते रहते थे, कि किसके साथ क्या करने से पैसे वसूल होंगे। इन बातों के अलावा वह बड़ा दुश्चरित्र भी था। सेन्ट्रल जेल से लगी हुई स्त्रियों की जेल भी थी। वहाँ तो उसकी दाल नहीं गल पाती थी, पर वहाँ काम करने वाली स्त्री-वार्डरों तथा अन्य स्त्रियों के साथ वह हमेशा ज़बर्दस्ती किया करता था। अपने यहाँ के दो-एक भारतीय वार्डरों की स्त्रियों से भी उसकी साँठ-गाँठ थी। उसके लिये इन स्त्रियों से दोस्ती

करना बहुत आसान इस कारण था, कि वही वार्डरों की ड्यूटी लिखा करता था। ऐसे वार्डरों की ड्यूटी वह हमेशा रात को डाला करता था, जिससे कि उसकी दुष्टता में कोई बाधा न पहुंच सके।

हाँ, तो इसी जेलर के सामने दुखहरण पेश किया गया। जेलर का नाम मिस्टर मूडी था। मूडी ने दुखहरण की तरफ देखा भी नहीं। पर जब उसने उसका वारंट पढ़ा, तो हँस पड़ा, और दुखहरण को इस प्रकार देखने लगा, मानो वह कोई अजीब किस्म का जन्तु हो। उसे तो ऐसे व्यक्ति बहुत हास्यजनक मालूम होते थे। वह ठहरा कर हँसा। "हा-हा-हा-हा! तुम बड़ा बहादुर है!"

पास खड़े तजर्बेकार लोग समझ गये, कि अब दुखहरण की खैरियत नहीं।

दुखहरण बोला—"हुजूर, नहीं..." जिला जेल में रहते-रहते दुखहरण ने यह सीखा था, कि हर एक को हुजूर कहना चाहिये।

मूडी फिर हँसा। बोला—"तुमारी बीबी बहुत खूबसूरट हैं?"

दुखहरण कुछ नहीं बोला। वह सिर नीचा किये, ज़मीन की तरफ देख रहा था। इतने में मूडी ने पता नहीं कुछ इशारा किया या क्या हुआ, कि आठ-दस आदमी डंडे ले कर, उस पर पिल पड़े। वह गिर गया, और थोड़ी ही देर में बेहोश हो गया। तब उसे उठा कर, अस्पताल भेज दिया गया। मूडी ने अपनी हिन्दी में अपने मुसाहिबों से जो कुछ कहा, उसका सारांश यह है—"यही लोग दुनिया को तबाह किये हुये हैं। जब तुम्हारी बीबी तुम से राजी नहीं है, तो उसको जाने दो। उसके पीछे किसी की जान क्यों लेते हो?" फिर बिगड़ कर, अँग्रेजी में बोला—"ये जज भी साले नम्बर एक के गधे होते हैं! ऐसे असभ्य आदमी को फाँसी देकर छुट्टी करते। यह नहीं, इसकी बीस साल की सजा करके, यहां भेज दिया। इसीलिये तो हमें अपने हाथों से सजा देनी पड़ती है।" कह कर, वह मूँछों पर ताव देता हुआ वहाँ से चला गया।

खैर, दुखहरण के भाग्य में जीना बदा था। वह अच्छा हो गया,

और उसे चक्की दी गई।

इसी प्रकार बीच-बीच में उस पर मार पड़ती। पर वह मरने से इनकार करता गया। सब दुखों को सह कर भी वह जीवित रहा।

क़ायदे के अनुसार हाईकोर्ट में उसके मुकद्दमे की अपील जेल की तरफ़ से की गई। यह अपील जस्टिस डुग्गल नामक जज के सामने गई। जस्टिस डुग्गल ने अपील को बड़े ध्यान से सुना। वे बहुत बुद्धिमान जज समझे जाते थे, और चीफ़ जस्टिस के प्रिय पात्रों में से थे। जब देखो, तभी चीफ जस्टिस की उनके यहाँ दावत रहती थी। दुष्ट लोग यह कहते थे, कि उनकी स्त्री लेडी डुग्गल चीफ़ जस्टिस से फँसी हुई थी, और इसी कारण चीफ़ जस्टिस के यहाँ उनकी दावत रहा करती थी। नाचों में अक्सर चीफ़ जस्टिस और लेडी डुग्गल एक साथ नाचा करते थे। इन दिनों यह अफवाह बहुत बढ़ गई थी। यहाँ तक कि यह बात जस्टिस डुग्गल के कानों तक भी पहुँच चुकी थी, और उन्हें भी कुछ बातों से शक होने लगा था। इधर वे चीफ़ जस्टिस की एक दावत में यह कह कर नहीं गये थे, कि उनकी तबियत ठीक नहीं है। वे यह उम्मीद करते थे, कि लेडी डुग्गल भी उस दावत में न जायँगी। पर वे एक सहेली से मिलने का बहाना कर के चली गईं। जस्टिस डुग्गल उस दिन से और भी परेशानी में रहने लगे। वे कुछ समझ नहीं पा रहे थे, कि क्या करें? कभी-कभी वे आत्म-हत्या की बात सोचते थे, तो कभी पेंशन लेने की बात।

इतने में यह मुकद्दमा उनके सामने आया। इस्तगासे की दलीलों को सुनने के बाद जस्टिस डुग्गल ने कहा—"मैं अभी कुछ नहीं कहूँगा। पर मुझे ऐसा मालूम होता है, कि विद्वान सेशन जज ने कानून के अर्थ का अनर्थ कर डाला। जब तक परिवार-प्रथा कायम है, तब तक पति को यह आशा करने का पूर्ण अधिकार है, कि उसकी स्त्री उसके प्रति सच्ची रहे। दुखहरण की तरफ़ से जो प्रबल उत्तेजना का कारण पेश किया गया है, उसे मैं अवज्ञा की दृष्टि से नहीं देख सकता। और रामचरण के प्रति तो किसी को कोई सहानुभूति हो ही नहीं सकती।"

तीन दिनों तक मुकद्दमें की सुनवाई होनी रही। अंत में जस्टिस डुग्गल ने दुखहरण के ऊपर से ३०२, यानी हत्या का दफ़ा उठा कर, उस पर ३०४, यानी आकस्मिक नर-घात का दफ़ा लगा दिया, और उसकी सज़ा घटा कर बीस साल से दो साल कर दी। अपने फैसले में जस्टिस डुग्गल ने सेशन जज की इस कारण कड़ी आलोचना की कि उन्होंने उत्तेजना की बात पर ध्यान ही नहीं दिया, जो सारे मुकद्दमें का केन्द्र-बिन्दु था।

दुखहरण इस समय तक डेढ़ साल कैद काट ही चुका था। सब कैदियों की तरह उसे दो-तीन महीनों की छूट मिली, और वह जल्दी ही छूट गया। दुखहरण यह समझ ही नहीं पाया, कि क्यों उसे पहले बीस साल की सजा हुई, क्यों उसे जेलर बराबर मारता था और क्यों हाईकोर्ट ने उसकी सजा घटा दी। और कैसे समझ पाता बेचारा ये बातें ? बड़ों की बड़ी बातें।

# प्रेम की विचित्र गति

बनारस में नाम के साथ गुरु शब्द का प्रयोग एक आम बात है। इस गुरु शब्द के साथ आवश्यक रूप से कोई गौरव संयुक्त हो ऐसी कोई बात नहीं।

मटरू गुरु इसी प्रकार के गुरु थे। उनका असली नाम शायद शामाचरण या ऐसा हीं कुछ था, पर किसी को यह मालूम नहीं था, कि मटरू गुरु का और भी कोई नाम है। मटरू गुरु जाति के बंगाली ब्राह्मण थे। पर काशी में बहुतेरे ऐसे लोग थे, जो उनके बंगालीपन में संदेह करते थे। बात यह है, कि मटरू गुरु बंगला और हिन्दी दोनों भाषाओं को बहुत अच्छी तरह बोल लेते थे। इसके अलावा काशी की बोलचाल की हिन्दी भी बहुत अच्छी तरह बोल लेते थे। बहुत सी भाषाओं का ज्ञान गुण ही समझा जाता है। कम से कम इसमें कोई दोष नहीं है। पर मटरू गुरु के क्षेत्र में यह बदनामी का कारण बन गया था। निन्दक यह कहते थे, कि मटरू गुरु के बाप और मां एक ही जाति के नहीं थे। इस प्रकार की कितनी ही बातें थीं।

मटरू गुरु ने एंट्रेंस तक शिक्षा पाई थी। लोग एतबार नहीं करेंगे, पर वे ट्यूशन भी करते थे। वे दोपहर को आमड़ेड़े के क्षेत्र में ही भोजन पाते थे। शाम को वे सब क्षेत्रों में भोजन करने वालों की तरह अपना बन्दोबस्त आप कर लेते थे। यानी कुछ चबैना वगैरा खा लेते थे। मटरू गुरु को रूप की दृष्टि से सुन्दर व्यक्ति नहीं कहा जा सकता था, क्योंकि अब वे चालीस के ऊपर हो चुके थे। फिर भी कुरूप हों, ऐसी बात नहीं थी।

उनकी लम्बाई पांच फुट, चार इंच थी। फुटबाल की तरह मोटे थे।

सिर गोल था। चश्मा लगाते थे, पर कमानी शायद टूट गई थी, इस कारण उसे डोरे से बाँध कर कान पर लपेटते थे। दाढ़ी मूँछ मुड़ाये रहते थे। वे अक्सर चश्मे के ऊपर से और जब कभी तबियत होती थी, तो नीचे से देखते थे। यह स्पष्ट था, आँखों को आराम देने के लिये वे चश्मा नहीं लगाते थे। बल्कि चश्मा एक पैतृक सम्पत्ति है, और उसे काम में लाना ही चाहिये, इसलिये चश्मा लगाते थे।

मटरू गुरु अविवाहित थे। हाँ, उनकी एक प्रेमिका अवश्य थी। प्रेमिका का नाम आन्दो था। आन्दो की उम्र बत्तीस के लगभग थी। उस के शरीर में चर्बी की अधिकता थी, इस कारण न केवल वह गजगामिनी हो गयी थी, बल्कि उसका स्वर भी दर्शनशास्त्र के अध्यापक के स्वर की तरह गम्भीर था। प्रेम की अधिकता से भी कभी आन्दो के स्वर में स्त्री कंठ सुलभ कोमलता नहीं आयी। आन्दो के रूप के वर्णन की आवश्यकता नहीं। इतना ही कहना यथेष्ट होगा कि स्त्री से कहीं अधिक वह चौकी-दार मालूम पड़ती थी।

आन्दो के प्रति न्याय करने के लिये यह बता देना आवश्यक है, कि वह व्यवसायिनी नहीं थी, और न रोटी दाल के लिये अपने प्रेमियों पर निर्भर थी। उसकी एक छोटी सी चना, लाई वगैरा की दूकान थी। उसी से उसका काम मजे में चल जाता था। चूँकि आन्दो स्वतन्त्र जीविका वाली थी, इसलिये उसके विचार भी स्वतन्त्र थे। और उसका विचार स्वातन्त्र्य उसके प्रेमियों के सिर ही जाता था।

प्रेम का मार्ग कंटकाकीर्ण होता है। मटरू गुरु का प्रेम भी कंटकाकीर्ण ही था। उनका एक प्रतिद्वन्दी था, जिसका नाम था श्रीपति।

श्रीपति ने मटरू गुरू को प्रेम क्षेत्र में दिवालिया कर देने में कोई बात उठा नहीं रखी, पर जिस कारण से हो, उसकी चेष्टा पूर्ण रूप से सफल न हो सकी। आन्दो अपने दोनों उपासकों को एक आँख से देखती थी। यहां तक कि दोनों में कहीं मुठभेड़ होकर शांति भंग न हो, इस-लिए उसने दफा १४४ लगा कर दोनों का अलग-अलग समय मुकर्रर कर

रखा था।

श्रीपति पहले कमिसरियट में नौकर था, और अब पेंशन लेकर अन्नपूर्णा और विश्वनाथजी के चरणों में पड़ा था। श्रीपति जरा ईर्ष्यालु व्यक्ति था। वह प्रेम में प्रतिद्वन्द्विता पसन्द नहीं करता था। विशेष कर श्यामाचरण को रकीब के रूप में पाकर, उसे बड़ा अपमान मालूम होता था।

एक दिन आन्दो लाई बना रही थी। श्रीपति पास बैठा प्रशंसा की दृष्टि से उसे देख रहा था। एकाएक वह बोला, "आन्दो, तुम बहुत सरल हो। वह रोज आ कर तुमसे डींग मारता है, कि फलां राजा के यहाँ, फलाँ सेठ के यहां उनका न्योता था, और वहाँ उसने पुलाव उड़ाया, मालपुवा खाया। लेकिन यह सब बिलकुल गलत है। उसके बाप ने भी कभी पुलाव और मालपुवा न खाया होगा वह क्या खायेगा। क्षेत्र में खाता है, और यहाँ आकर डींग मारता है।

बंगालिनें जब लाई बनाती हैं, तो उसमें बालू को चलाने के लिये एक छोटे से झाड़ू का इस्तेमाल करती हैं। आन्दो ने श्रीपति की तरफ उस झाड़ू को उठाते हुए कहा, "तुम्हें तो बस वही बात आती है। जब आओगे, तो उसी की बुराई करोगे। क्या कोई और विषय नहीं है बात करने के लिये, दाढ़ी जार!" कहकर, उसने उसके मुँह पर १४४ लगा दिया।

श्रीपति यों तो साधारणतया मान जाता था, पर आज बिगड़ गया। बोला, "बिलकुल सच कह रहा हूं। इसमें डर क्या है? साँच को आँच क्या? वह अवश्य क्षेत्र में खाता है। मैंने अपनी आँखों से देखा है।"

लाई बनाते बनाते, हाईकोर्ट के जज की तरह गम्भीर स्वर में आन्दो बोली, "सबूत? कोई सबूत है?"

"है क्यों नहीं? अगर कोई आदमी दिन में ग्यारह बजे आमबेड़े के क्षेत्र के सामने खड़ा रहे, तो उसे श्यामाचरण भीतर जाता दिखाई देगा। उसे आसानी से ऐसा करते देखा जा सकता है। इसमें क्या मुश्किल है?

आन्दो ने धमाके साथ कड़ाही उतार दी, और बालू को हिलाते हुई नाराज होकर बोली "बड़ा आसान तरीका बता रहे हैं! मैं सब काम छोड़ कर, भिखमंगिन की तरह दिन में ग्यारह बजे क्षेत्र के सामने जाकर खड़ी हो जाऊं! शरीफ घर की कोई औरत ऐसा कर सकती है?" फिर क्षण भर रुक कर, पारा चढ़ाती हुई बोली "तुम ने मुझे समझ क्या रखा है? मैं क्या कोई कसबिन हूँ, कि जाकर रास्ते में खड़ी रहूँ?"

बस, खैरियत यह थी, कि इस समय आन्दो के हाथ खाली नहीं थे, नहीं तो श्रीपति को लेने के देने पड़ जाते।

श्रीपति घबरा गया। बात बिलकुल दूसरी दिशा में चली गयी। उस समय उसके दिमाग में एकाएक एक बात आयी। उसने हँसते हुए कहा " मालकिन, गुस्सा क्यों करती हो? मैं एक दवा लाये देता हूं। श्यामाचरण ज्यों ही आ कर डींग मारे, उसे किसी तरह वह दवा खिला दो। बस, पुलाव, मालपुवा, सब सामने आ जायगा।

"हाँ हाँ, मैं, तुम्हारे कहने से उसे जहर दे दूँ, और फिर बंधी बंधी फिरूँ! रामचन्द्र सरकार की लड़की हूँ। कुछ वंश का भी तो ख्याल रखना है!"

इसके बाद दोनों धीरे-धीरे बात करने लगे। श्रीपति दो रुपये दे कर चला गया।

अगले दिन मटरू गुरु निर्विकार चित्त लिये, प्रेम में फसफसाते हुये, साढ़े ग्यारह बजे दिन के समय लाई वाली आन्दो के घर पहुँचे। कवित्वपूर्ण ढंग से बाहर से ही बोले, "राधे सखी, द्वार खोलो!"

आन्दो और रोज तो काफी देर तक खड़ा रखवा कर दरवाजा खोलती थी। पर आज 'राधे' कहते ही दरवाजा खुल गया। सामने आन्दो मधुर हँसी हँसती हुई खड़ी थी। कोकिल विनिंदित स्वर में बोली ..."आओ!" कह कर उसने प्रेम विह्वल तरीके से अपने पहलवानी हाथों में श्यामाचरण के अपेक्षाकृत दुबले हाथों को पकड़ लिया।

मटरू गुरु लट्टू होकर जरा सा लड़खड़ाते नजर आये। और कोई

दिन होता, तो इस बेअदबी के लिये मटरू गुरु पर लाई वाले झाड़ू की मार पड़ती, पर आज तो आन्दो प्रेम की प्रतिमूर्ति ही बनी हुई थी। उसने उसे पास खींच लिया, और दरवाजा बन्द कर दिया।

श्यामाचरण बीस साल पहले नौटंकी में कभी कृष्ण बनते थे, कभी कंस। अभी उस युग के कुछ चिन्ह उनमें बाकी थे। इठलाते हुये कवि विद्यापति की भाषा में बोले, 'मझु देह आंचर पाती! आज इतने लेडीकेनी खा गया, कि खड़ा ही नहीं हुआ जाता। पर, राधे, तुम्हारे प्रेम में यह शक्ति है, कि मथुरा से वृन्दावन बारह कोस पैदल चला आया। देव देव! अब तो मुझ से खड़ा नहीं रहा जाता।' कह कर उसने डकार लेते लेते अपनी ठुड्डी से आन्दो की चर्बीली ठुड्डी को घिस दिया।

दूसरा दिन होता, तो आन्दो बहुत नाराज होती, पर आज तो वह सब कुछ सहने पर तुली हुई थी।

आन्दो बोली, 'मेरे पास एक दवा है, जिसे मैं पानी में घोल कर देती हूँ। अभी पेट ठंडा पड़ जायगा।' कह कर उसने बिना पूछे एक पुड़िया निकाली, और उसे पानी में घोलने लगी।

क्षेत्र में जो खाना मिलता है। उससे पेट भी भर जाता है, और उसे हजम करने के लिये दवा की जरूरत नहीं होती। फिर उसे हजम करने के लिये दवा की जरूरत ही क्या है? जितनी देर में हजम हो, उतना ही अच्छा है, क्योंकि संध्या सपय उतना ही कम खर्च होता है। पर श्यामाचरण तो फँस गया था। वह दवा पीने से इनकार करता, तो झूठा पड़ता था। इसलिये उसने आन्दो का दिया हुआ गिलास ले लिया।

आन्दो ने गिलास देते हुए गर्व के लहजे में कहा, 'तुम तो आज भी रस गुल्ला और लेडीकेनी उड़ा आये! यहाँ तुम्हारे लिये मैंने आज लड्डू बना रखा था, पर तुम्हारा तो यह हाल है।'

श्यामाचरण हाथ में गिलास ले कर पछता रहे थे, कि आज डींग न मारते, तो लड्डू खाने को मिलते। उन्होंने हँस कर कहा, 'आज क्या बात है, जो लड्डू खिलाने का विचार था? खाऊंगा क्यों नहीं? अभी दवा

खायी, कि हजम हुआ ! आज इतना ठाट क्यों है ? आज भैया दूज है क्या ?'

आन्दो ने आज बहुत संयम से काम लिया था, पर अब उससे सहा नहीं गया। तैश में आकर बोली, 'सुनो इस मुए की बातें। तू मेरा भैया है ? राम, राम, ! आज बहुत दिल्लगी सूझ रही है ! अभी झाड़ू से सारा जहर उतार न दिया, तो मैं अपने बाप से नहीं।'

इस डाँट फटकार से श्यामचरण इतना घबरा गया, कि उसने एक ही घूँट में उस बदबूदार दवा को पी लिया। दवा कै कराने के लिये थी। थोड़ी देर में ही उसकी क्रिया शुरू हो गयी।

अब सचमुच श्यामाचरण के पेट में भयंकर खलबली मच गयी थी। वह अब आन्दो की तरफ प्रेमपूर्ण नेत्रों से नहीं देख रहा था। उसे पेट में बड़ी तकलीफ मालूम हो रही थी। उसकी आँखों में एक पारलौकिक दृष्टि आ गयी थी। उसने अपने को सँभालने की बहुत कोशिश की, पर दवा कहीं अपना काम किये बगैर रह सकती थी ? श्यामाचरण ने डूबते हुये व्यक्ति की दृष्टि आँखों में लाते हुये कहा, 'सखी, आज बहुत ज्यादा खा गया था। तबियत बहुत घबरा रही है। लौंग वौंग तो नहीं होगी।'

आन्दो ने जल्दी से उठ कर लौंग निकाल कर दी। फिर बोली, 'कुछ नहीं। अभी तबियत ठीक हो जायगी ! खा लो इसे।'

श्यामाचरण ने घबराहट में एक साथ तीन चार लौंग खा लीं। पर इससे परिस्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ, बल्कि तबियत और भी घबराने लगी। चेहरे पर विकलता और एक तरह का डर छा गया। वे क्रुद्ध होकर बोले,...'सालों ने ब्रह्म भोज कराया, कि ब्रह्म हत्या का सामान कर दिया। मिठाइयाँ इतनी अच्छी थीं, कि जी बिना खाये न माना, और...'

श्यामाचरण इतना कह पाये थे कि उनकी आँखे उलट सी गईं। भीतर से कोई चीज बहुत जोर से बाहर आने की चेष्टा कर रही थी। श्यामाचरण अपनी शक्ति भर उसे रोक रहे थे। उन्होंने फिर दो-चार

लौंग खाई। पर कै नहीं रुकी। "मैं मर गया !' कहकर वे एकाएक बाहर नाली की ओर दौड़े, और ओ, ओ, करते भयकर वेग से कै करने लगे।

आन्दो उनके साथ-साथ छाया की तरह बाहर गयी थी। पर वह ऐसे समयों में जो पीठ आदि सहलाया जाता है, वह सब नहीं कर रही थी। वह एकटक कै में निकली हुई चीजों को देख रही थी।

श्यामाचरण के पेट में जो कुछ था, वह सब अन्तिम दाने तक निकल आया। जब कै पूरी हो चुकी, तो आन्दो ने कहा, 'तुम तो कहते थे कि रसगुल्ला और लेडकेनी खाये हो ! पर यहां तो सिर्फ चावल और मटर की दाल है।

श्यामाचरण ने एक बार आन्दो की ओर देखा। अब वे समझ गये, कि षड्यंत्र करके कै करायी गयी है। अतिशय क्रोध और लज्जा के मारे उनके मुँह से कोई बात नहीं निकली।

वे सीधे सड़क पर पहुँच गये।

बस, उसी दिन से वे श्यामाचरण से मटरू गुरु हो गये थे। इस प्रकार से श्रीपति ने अपने रकीब को नीचा दिखाया था।

किसी को असली बात की कानों कान खबर नहीं हुई, पर लोग शीघ्र ही जान गये, कि 'मटरू गुरु' कहने से वे चिढ़ते हैं। बस, लोग जिधर देखो, उधर ही उन्हें 'मटरू गुरु, 'मटरू गुरु' कहने लगे। बालक से लेकर वृद्ध तक, सभी उनको 'मटरू गुरु' कहने लगे। मटरू गुरु की गालियों को लोग हाजमें को बढ़ाने वाले 'लवण भास्कर' के रूप में लेने लगे। मटरू गुरु बंगला गालियों का तो प्रयोग करते ही थे। साथ ही साथ हिन्दी गालियां अनुवाद करके अपने ढंग से देते थे। हिन्दी गालियों में कुछ शब्द ऐसे बारीक होते थे, जिनका उस समय तक बंगला में कोई अनुवाद सम्भव नहीं था। पर एक प्रतिभाशाली व्यक्ति की तरह मटरू गुरु ने उन गालियों को ज्यों की त्यों विभक्ति बदल कर बंगला में ले लिया था। इस प्रकार जो अन्तर्प्रान्तीय गालियां तैयार हुई, उनके कारण मटरू गुरु की कद्र और भी बढ़ गयी।

मटरू गुरु का जो ट्यूशन था, वह भी इसी चिढ़ाने और बदले में गालियां देने की बदौलत छूट गया। कहावत है, कि जब विपत्ति आती है, तो झुंड बांध कर आती है। प्रेमिका तो छूट ही गयी, अब ट्यूशन भी छूट गया। सो अब तो मटरू गुरु बिलकुल मंझधार में पड़ गये।

पर मटरू गुरु संग्राम से घबरा कर भागने वाले जीव नहीं थे। वे चुपके-चुपके ट्यूशन खोजने लगे। कलकत्ते से एक बंगाली सज्जन हवा बदलने के लिये आये हुये थे। वे काशी के किसी अन्दरूनी मामले की बात नहीं जानते थे। उनके लड़के को एक ट्यूटर की जरूरत थी। बस, उन्होंने मटरू गुरु को रख लिया।

मटरू गुरु अपने ढंग के बहुत बड़े वस्तुवादी थे। वे समझते थे, कि श्रीपति या और किसी को इस ट्यूशन की बात का पता लगा, तो बस ट्यूशन जाता रहेगा। इसलिये वे बड़ी सतर्कता से अपने छात्र के पास जाते और लौटते थे। काशी गलियों का शहर है। मटरू गुरु पचासों गलियों में चक्कर काटते हुये वहां उसी प्रकार पहुँचते थे, जैसे क्रान्तिकारी सी० आई० डी० को छका कर अपने केंद्र में पहुंचते हैं।

इसी प्रकार कई महीने बीत गये। पर अन्त में मटरू गुरु पकड़े ही गये, जैसे क्रांतिकारी पकड़े जाते हैं। जब वे बहुत दिन तक पकड़े नहीं गये, तो वे कुछ असावधान हो गये। पचास की जगह दस-पाँच गलियों का ही फेरा करके वहां पहुँचने लगे। नतीजा यह हुआ, कि एक गली के कुछ लड़कों ने कई दिन तक मटरू गुरु को एक ही समय पर छाते से मुंह छिपने की कोशिश करते हुये जाते देख लिया। उन लड़कों के मन में खटका पैदा हुआ। बस, चुपके-चुपके उनके पीछे लग गये। उसी दिन सब को सारा हाल मालूम हो गया। उन दिनों गर्मी की छुट्टी थीं। सब लड़के बेकार थे ही। बस क्या था, सब के सब उनके पीछे पड़ गये।

मटरू गुरु अपने छात्र को डैन्यूब नदी के गतिपथ को समझाने में व्यस्थ थे। डैन्यूब नदी का गति पथ बहुत टेड़ा मेढ़ा है, सो शायद इसी बात को जल्दी समझाने के लिये वे अपने मुंह टेड़ा मेढ़ा बनाते जाते थे।

इतने में बाहर डाका पड़ने की तरह शोर हुआ। मटरू गुरु के कान खड़े हो गये, वे समझ गये, कि मामला क्या है। दूसरी जगह होती, तो गालियां देने को दौड़ पड़ते। पर जैसा कि बतलाया गया है, वह बहुत बड़े वस्तु-वादी थे। वे और कुछ न कह कर, जिद के साथ डैन्यूब नदी के जटिल कुटिल पथ को समझाते रहे।

मकान के सामने शोर सुन कर, कलकत्ते के वे बंगाली सज्जन यह जानने के लिये कि क्या मामला है, बाहर निकल आये। लड़कों ने उन्हें जो देखा, तो और भी जोर से चिल्लाने लगे......

'मटरू गुरु का चेला,

है बड़ा अलबेला।

बाप बजावे घंटा,

महतारी खावे भँटा।

डडँग डडंग, डंग डंग,

देखो मटरू गुरु का रंग!'

कलकत्ते के उन सज्जन को देख कर भीड़ के एक छोटे लड़के ने अपने बड़े भाई से कहा, 'वह देखो! वह है मटरू गुरु!'

पर बड़े भाई ने उसे समझा दिया, कि यह मटरू गुरु नहीं हैं।

कलकत्ते के वे सज्जन थोड़ी देर तक खड़े-खड़े लड़कों का यह हुड़दंग देखते रहे। मटरू गुरु किसका नाम है, वे यह नहीं जानते थे। इसलिये वे समझे, कि यह बनारसियों का कोई त्यौहार है, और लड़के कुछ चन्दा वगैरा मांगने आये हैं। वे चन्दा देने की पद्धति के बिलकुल विरुद्ध थे। इसलिये वे फौरन अपने कमरे में लौट गये, और उधर का दरवाजा बन्द कर लिया।

मटरू गुरु यों तो घड़ी देख कर पांच रुपये माहवारी पर रोज दो घंटे पढ़ाते थे, पर आज उनको न मालूम कैसा जोश आ गया, कि पक्के ढाई घंटे तक डैन्यूब नदी और उसके किनारे के सब शहरों पर लेक्चर देते रहे। अन्त में जब वे निकले, तो उस समय तक लड़के ऊब कर चले जा

चुके थे ! चिढ़ाने में तो मजा तभी आता है, जब चिढ़ने वाला सामने हो, और वह कुछ कहता जाये। पर मटरू गुरु तो निकले ही नहीं।

इस प्रकार उस दिन तो मटरू गुरु बच गये, पर बकरे की माँ कब तक खैर मनाये ? कलकत्ते के उन सज्जन के मकान के सामने जब कई दिन तक प्रदर्शन हुआ, तब वे अपने पड़ोसियों से पूछने लगे, कि मामला क्या है ? तब एक पड़ोसी ने बतलाया, कि श्यामाचरण उर्फ मटरू गुरु बहुत ही बदनाम आदमी है बनारस का। यहां का कोई भी भला आदमी उसे अपने लड़के के लिये ट्यूटर नहीं रखता।

कलकत्ते के उन सज्जन ने फिर भी मटरू गुरु को छुड़ाया नहीं। बात यह थी कि मटरू गुरु बहुत कम पैसा लेते थे। पर थोड़े दिनों में चिढ़ाने वालों ने एक नया तरीका अख्तियार किया। वे ज्यों ही मटरू गुरु के छात्र को रास्ते में देख लेते थे, बस उसे 'मटरू गुरु का चेला, है बड़ा अलबेला' वगैरा कह कर चिढ़ाने लगते।

एक दिन कलकत्ते के वे सज्जन अपने लड़के के साथ टहलने जा रहे थे, कि लड़कों ने वही कविता पढ़नी शुरू कर दी। बस, मटरू गुरु का ट्यूशन खत्म हो गया।

मटरू गुरु को इस बात से बड़ी निराशा हुई।

वे १९ दिन के ट्यूशन की तनख्वाह तीन रुपया, तीन आना लेकर घर लौट रहे थे। रास्ते में एक भद्र महिला बनिये की दूकान पर कुछ चीजें खरीद रही थी। यह भद्र महिला न तो मटरू गुरु से परिचित ही थी, और न यही जानती थी, कि इस समय मटरू गुरु नामक व्यक्ति बड़ी झुंझलाहट में पास ही से जा रहे हैं, वह बनिये से कह रही थीं, 'हाथी मार्का दो दियासलाई और मटर की दाल भी तीन सेर भेजना।'

मटरू गुरू ने जो इस प्रकार मटर की दाल का नाम सुना, तो वे बौखला गये। वे यह समझे कि उन्हें चिढ़ाने के लिये ये बातें कही गयी हैं। बस, उन्होंने न आव देखा, न ताव, मुंह बना कर कहा,...'मटर की दाल क्यों ? मुझे ले ले न !'

बनिया मटरू गुरु को पहचानता था। वह हँसा। भद्र महिला कुछ समझी नहीं। मटरू गुरु के तने हुये चेहरे को देख कर वह समझी कि शायद यह कोई पागल है। इसलिये वह भी सिर नीचा कर चुपचाप जाने लगीं। पर इतने में क्या हुआ, कि उधर से उस भद्र महिला का जवान लड़का आ गया। उसने मटरू गुरु की बातें सुन ली थीं। यद्यपि वह मटरू गुरु को जानता था, और दूसरा समय होता, तो मटरू गुरु के मुह से ही सौ बार मां बहिन की गालियां खा लेता, पर इस समय जो उसने इस परिस्थिति में ऐसी बातें सुनी, तो वह नाराज हो कर मटरू गुरु पर पिल पड़ा। अब तो मटरू गुरु और भी गालियां देने लगे।

वह जवान मटरू गुरु को घसीटते-घसीटते थाने की तरफ ले जाने लगा।

जब से मटरू गुरु के करने के बाद चले गये थे, तब से आन्दो के यहाँ श्रीपति का एक छत्र राज्य था। पर आन्दो तो दो की आदी हो चुकी थी, उसे यह एक प्रेमी अच्छा नहीं लगा। श्रीपति भी अपनी पूर्व दशा भूल कर इधर कुछ गुस्ताख सा हो गया था।

आन्दो ने अपने ढंग से दो चार लगा कर यह निष्कर्ष निकाला कि यह परिस्थिति ठीक नहीं है। पर मटरू गुरु की जिस तरह से कलई खोली गई थी, उसे देखते हुये अब उन्हें फिर बुलाना भी असम्भव सा था। फिर भी आन्दो के मन में आशा थी। अपने कमजोरी के क्षणों में वह अपने से यों तर्क करती थी, 'माना कि श्यामाचरण झूठा था, और अपने खाने पीने के सम्बन्ध में झूठी डींगे मारा करता था, पर जहाँ तक प्रेम का सम्बन्ध है, उसमें इससे क्या होता जाता था? झूठ तो सभी पुरुष बोला करते हैं।'

इस प्रकार आन्दो सोचती, पर कुछ न कर पाती। इसी तर्क वितर्क में कई महीने बीत गये।

एक दिन श्रीपति ने आकर, बहुत खुश हो कर कहा, 'सुना, आन्दो, क्या हुआ?'

आन्दो ने पूछा, 'क्या हुआ ?'

श्रीपति ने बतलाया, 'मटरू ने एक भद्र महिला का अपमान किया, इसलिये वह थाना पहुंचा दिया गया है। अब बेटा को चक्की पीसनी पड़ेगी, तो आटा दाल का भाव मालूम होगा !'

श्रीपति के अनुसार इस खबर का आन्दो पर जो असर होना चाहिये, वह नहीं हुआ। वह एकाएक बहुत परेशान हो गयी। करीब-करीब रुआंसी हो कर बोली, "क्यों अपमान किया था ?"

तब श्रीपति ने खुश हो कर मटर की दाल खरीदने का सारा किस्सा कह सुनाया।

अब तो आन्दो की आंखों में आंसु आ गए। अप्रत्याशित रूप से नाराज होती हुई बोली, "तुम्हीं तो इसके लिये जिम्मेदार हो। न तुम कैद कराते, और न यह नौबत आती ! हट जाओ मेरे सामने से ! तुम बहुत नीच आदमी हो !"

इसके बाद आन्दो वहाँ से निकली, और सीधे उस भद्र महिला के मकान के सामने पहुंच कर इस प्रकार से रोने लगी जैसे किसी के मरने पर ही रोना ठीक समझा जाता है। वह रोती जाती थी, और साथ ही सारा किस्सा बयान करने और भद्र महिला पर सारा दोष डालती जाती थी।

भद्र महिला इस पचड़े के लिये तैयार न थीं। देखते-देखते वहाँ लोग इकट्ठे हो गये। सत्याग्रह का युग था। इसलिये जनता की सहानुभूति जेल जाने वाले के साथ हो गयी थी ! आन्दो ने भी हवा का रुख देख कर, इस ढंग से बातें कहीं, कि ऐसा मालूम हुआ कि श्यामाचरण नामक एक व्यक्ति देशभक्ति के कार्य में जेल गया है, और इस घर में जो भद्र महिला रहती हैं, वह सी० आई० डी० में हैं।

भीड में से एक व्यक्ति ने आन्दो को ध्यान से देखते हुये कहा, खद्दर तो पहने नहीं है ! सत्याग्रह काहे को कर रही है ?'

तब एक दूसरे ने कहा, "यह थोडे ही सत्याग्रह कर रही हैं ! इनके

पति ने किया, और जेल चले गये ! यह किसी पुलिस वाले का मकान है ! देख नहीं रहे हो ?"

नतीजा यह हुआ, कि बड़े जोरों से जयकारे लाने लगे।

अन्त में उस भद्र महिला के घर वाले इतने कायल हुये, कि उन्होंने जाकर मुकदमा वापस ले लिया। और मटरू गुरू थाने के बाहर आ गये।

तब से मटरू गुरू और आन्दो एक साथ ही रहते हैं। मटरू गुरू को अब ट्यूशन की फिक्र नहीं है। आन्दो की बदौलत मोटा झोटा मिल ही जाता है। आन्दो के डर के मारे बहुत कम लोग अब उन्हें मटरू गुरू कहते हैं। पर ऊपर से यह बन्द हो जाने पर भी, भीतर ही भीतर तो लोग उंगली दिखाते ही हैं।

श्रीपति अब उस रास्ते से नहीं गुजरता। पर अब भी वह पूर्णतः निराश नहीं हुआ है। बारह वर्ष में, कहा जाता है, घूरे का भाग्य भी बदलता है। शायद श्रीपति का भाग्य भी कभी बदले !

# भाग्य की चाभी

फैसस एलेकजेन्डर रेल के दफ़्तर में क्लर्क था। पर इतने से वह गृहस्थी का खर्च नहीं चला पाता था। महीने के अन्त तक उसका हाथ खाली हो जाता। एक जमाना था, जब एलेकजेन्डर को एक सौ पचहत्तर रुपये मिलते थे, पर अब छँटाई के कारण उसकी यह हालत हो गयी। बहुत से लोग तो बिलकुल निकाल ही दिये गये। पर एलेकजेन्डर पुराना आदमी था। मालिकों ने कहा..."भई, यह सौ रुपये की नौकरी है। इसे लो, तो लो, नहीं तो कोई दूसरी जगह खाली नहीं है।"

जिस जमाने में एलेकजेन्डर को यह मोटी तनख्वाह वाली जगह मिली थी, उस समय नौकरियों के क्षेत्र में ऐंग्लो इन्डियनों का स्वर्ण युग था। कोई यह नहीं देखता था कि अमुक ऐंग्लो इन्डियन ने क्या पास किया है, कुछ पास भी किया है या नहीं? पर अब इस क्षेत्र में उनके लिये भाटा आ चुका था। अब बात-बात में यह पूछा जाता कि 'तुमने क्या पास किया है, कुछ पास किया है या नहीं?' इस लिये एलेकजेन्डर को यह सौ रुपये वाली नौकरी लेनी पड़ी। एलेकजेन्डर भली भाँति यह जानता था कि यदि उसने इस नौकरी को स्वीकार नहीं किया, तो उसके लिये कोई दूसरा चारा नहीं है। वह यह भी जानता था कि उसने न तो सीनियर कैम्ब्रिज पास किया, न जूनियर कैम्ब्रिज। इसलिये सौ रुपये की नौकरी मिलनी भी मुश्किल है। बात यह है कि अब जमाना बदल चुका था अब ऐंग्लो इंडियनों को केवल अपने चमड़े के रंग पर कोई नौकरी नहीं मिलती थी।

इधर एलेकजेन्डर ने नौकरी तो स्वीकार कर ली, किन्तु घर में बहुत भयंकर हाहाकार मच गया। एलेकजेन्डर की बीबी ऐलिस एकाएक अपने जीवन के मानदंड को उतार न सकी, या यों कहा जाय कि उसने उतारना न चाहा। नतीजा यह हुआ कि साल भर के अन्दर ही हजार रुपये से अधिक कर्ज हो गया।

इस पर भी जब ऐलिस को होश नहीं आया, तब एलेकजेन्डर ने बाध्य होकर उसे एक दिन आटा दाल का भाव समझा दिया। समझाने की भाषा कुछ रूखी हो गयी, इसके परिणाम स्वरूप एक झगड़ा उठ खड़ा हुआ। एलेकजेन्डर अपनी बीबी की फजूल खर्ची से इतना उकताया हुआ था कि वह झगड़े से नहीं झिझका। वह आज इस मामले में अंतिम फैसला करने पर तुला हुआ था। उसका गला धीरे-धीरे चढ़ता गया, और एक ऐसी परिस्थिति आ गई कि ऐलिस को भी दबना पड़ा।

पति और पत्नी ने मिल कर एक बजट तैयार किया। अब उनकी गृहस्थी की नांव एक तरफ तो अपव्यय और दूसरी तरफ अव्यय से बच कर चलने लगी। एलेकजेन्डर साधारण ऐंग्लो इंडियनों के मुकाविले में सरल तथा शरीफ था। उसने ऐलिस से प्रेम विवाह किया था। इसलिये उसका ध्यान इस बात की ओर न जा सका कि नये बजट में श्रीमती का खर्च तो ज्यों का त्यों बना रहा, और छँटाई की कैंची केवल उसके तथा बच्चों के खर्च पर ही चली।

ऐलिस ने मजबूरन कुछ अपना खर्च भी घटा अवश्य दिया, पर मन से वह इस कटौती के साथ सन्धि न कर सकी। वह बार-बार अपने पति को इसके सम्बन्ध में अपनी राय स्पष्ट बताने लगी। उसके मन में सदा एक असंतोष की घटा छायी रहती। कभी-कभी झुँझला कर आईने में देख वह इस झँझट से मुक्ति पाने की सोचती। पर अब उम्र अधिक हो गयी है। चार पाँच साल पहले यदि यह मामला इस रूप में घटित होता, तो वह अपनी मुक्ति करा लेती। इस बीच में वह तीन बच्चों की माँ भी हो चुकी थी। नहीं, अब मुक्ति की बात कल्पनातीत है। अब मुक्ति असंभव

है। अब तो इसी बन्धन में जीवन व्यतीत करना है।

सब से आखिरी बच्चे के जन्म के बाद से वह बहुत ही कमजोर हो गयी थी। उसके बाद चार साल गुज़र गये थे, किन्तु फिर भी उसके चेहरे का वह रूप नहीं लौटा। इसी कारण वह छोटे बच्चे पर सब से अधिक नाराज रहती थी। यह बच्चा एलिस के लिये बिल्कुल राक्षस था, पर यही बच्चा सब से सुन्दर था, और अपने पिता के नयनों का तारा था।

ऐलिस के इस व्यवहार से और जब तब लड़-पड़ने से एलेकजेन्डर बहुत अशान्त रहने लगा। ऐलिस इतनी झगड़ालू हो गयी कि एलेकजेन्डर उससे बच कर चलने लगा।

और उधर एक हजार रुपये का कर्ज था। यह कर्ज नहीं, बल्कि उसके भविष्य के जीवन की आशाओं का गले में बँधा हुआ एक पहाड़ सा था। कभी एलेकजेन्डर यह स्वप्न देखा करता था कि वह भी एक छोटी सी आस्टीन कार रखेगा, उसमें वह अपनी स्त्री तथा बच्चों के साथ हवाखोरी करने जाया करेगा। पर अब यह बात स्वप्न हो चुकी थी। इस आशा की जड़ें खुद चुकी थीं। रेडियो, मोटर या ग्रामोफोन, जिस चीज का भी स्वप्न जब एलेकजेन्डर देखता, फौरन उसकी आँखों के सामने एक की संख्या और उसके बाद तीन शून्य नाच उठते थे। जैसे बादल से सूर्य नहीं दिखलाई देता, उसी प्रकार इस संख्या के कारण वह आगे कुछ भी नहीं देख पाता।

जिस समय घर का नया बजट बना था, उस समय ऐलिस ने कहा..."यह 'स्टेट मैन' खरीदने का खर्च तो बिल्कुल ही फजूल है, इसे काट देती हूँ?"

एलेकजेन्डर ने इस पर मुँह बिचका लिया था। बात यह थी कि अखबार पढ़ना ही उसका एकमात्र आनन्द था। वह अखबार पढ़ता ही नहीं था, बल्कि उसे चाट डालता था। वह विज्ञापन से लेकर छोटी से छोटी खबर तक सब पढ़ जाता था। उसके अखबार पढ़ने में एक खास

बात यह भी थी कि जिस समय वह अखबार पढ़ता था, उस समय यदि कोई आकर उससे बीच के पन्ने माँगता था, तो वह बहुत बुरा मानता था। पूरे अखबार को अपने हाथ में लेकर उसे एक न्यारा ही सुख प्राप्त होता था। जो बहुत कुछ आध्यात्मिक आनन्द की श्रेणी का था। खैरियत यह थी कि ऐलिस को अखबार से कोई विशेष दिलचस्पी नहीं थी। वह केवल जन्म मृत्यु तथा विवाह वाले विज्ञापनों को देख लेती थी।

ऐलिस ने अखबार के खर्च को घटाने के प्रस्ताव को रखते हुए कहा था..."दस ही कदम पर लाइब्रेरी है। वहाँ जाकर मजे में हम एक नहीं, बीस अखबार पढ़ सकते हैं। महीने में तीन चार रुपये की बचत बहुत है।"

इसलिये उस दिन से एलेकजेन्डर का अखबार बन्द हो गया। पर एलेकजेन्डर को तो पढ़ने का चटका लगा हुआ था। जब वह दफ्तर से लौटता, तो सामने जो भी पुस्तक मिल जाती थी, चाहे वह बच्चों की पुस्तक ही क्यों न हो, उसे उठा कर ध्यान से पढ़ने लगता था। इस पर ऐलिस मन-ही-मन हँसती थी। कभी उसने इस व्यक्ति को दस पाँच चाहने वालों में से चुन कर पति के आसन पर बैठाया था, किन्तु अब जिस बात पर उसे करुणा से रो पड़ना चाहिये था, उस पर हँसती थी।

एलेकजेन्डर को अलिफलैला की कहानी बहुत पसन्द थी। घर में उसकी एक प्रति थी, एलेकजेन्डर ने इसको बचपन में पढ़ा था। वह अब उसे फिर पढ़ने लगा। हाथ लग जाती, तो वह अब किंग्स रीडर भी पढ़ता। न मालूम उसको इन रीडरों में क्या रस आता था। जिस समय वह बच्चों के किसी रीडर को उठा कर पढ़ता होता था, उस समय यदि कोई आ जाता, तो वह इस प्रकार उन रीडरों के पन्ने उलटने लगता, मानों यों ही पन्ने उलट रहा है। उसकी स्त्री और बड़ा बच्चा उसके इस कृत्य को देख कर आश्चर्य करते। ऐलिस ऐसे मौकों पर हमेशा हँसती ही थी, यह बात नहीं, कभी-कभी वह जब पीछे से अपने पति को इस प्रकार ध्यान से बच्चों के रीडरों को पढ़ते देखती, तो उसे दस बारह वर्ष पहले

के सरल एलेकजेन्डर का चेहरा याद आ जाता। उसकी आँखें कुछ नम हो जातीं, और एक क्षण के लिये उसमें यह इच्छा होती कि वह उसे प्रियतम फ्राँसिस कह कर पुकारे, पर वह ऐसा नहीं कर पाती थी। मन की बात मन ही में रह जाती।

इधर एलेकजेन्डर रीडरों के सूर्य और वायु की लड़ाई से लेकर 'अलिफ लैला' के 'अलादीन' 'अलीबाबा' 'सिन्दबाद' में डूबा रहता। पढ़ते पढ़ते वह सोचता कि वह रेल का एक मामूली क्लर्क न होकर 'अलादीन' होता! ओह, यदि यह 'चिराग' उसे केवल दो मिनट के लिये मिल जाता, तो उसकी गरीबी और कर्ज एक क्षण में ही लुप्त हो जाता। तब ऐलिस देख लेती। या यदि वह 'सिन्दबाद' की तरह केवल एक ही यात्रा कर पाता, तो भी उसकी सारी चिन्ता दूर हो जाती। कुछ नहीं तो यदि वह 'अलिबाबा' के चालीस डाकूओं में से भी एक होता, तो उसे इस प्रकार क्लर्कगिरी नहीं करनी पड़ती। इस प्रकार अलिफ लैला पढ़ते-पढ़ते उसके पात्र उसके नायक तथा आदर्श हो गये। उसने सुन रखा था कि इस युग में कोई अलादीन तो नहीं हो सकता, किन्तु कुछ हिन्दू साधु अब भी ऐसे हैं, जो जो चाहें, कर सकते हैं। अब उसे जब भी फुरसत मिलती, ऐसे साधुओं तथा योगियों की तलाश में रहने लगा। इस तलाश में उसने ऐंग्लो इंडियन होने का सारा गर्व त्याग दिया, और नंगे तथा अर्ध-नंगे लोगों से बड़ी श्रद्धा के साथ मिलने लगा।

उसने 'अलिबाबा' के डाकुओं की तरह डकैती की बात भी सोची, पर जब उसने देखा कि हर चौमुहानी पर पुलीस, टेलीफोन, आदि हैं, तो उसने सोचा कि इस युग में ये बातें असम्भव हैं। फिर उसने अपना हृदय टटोला, तो देखा कि डकैती करना उसके वश की बात नहीं है। ऐसा करने के लिये जिस प्रकार का साहस, क्षिप्रता, संगठन शक्ति तथा निष्ठुरता की आवश्यकता है, वैसी उसमें नहीं है।

फिर भी एक हजार का कर्जा और उस पर बढ़ता हुआ सूद उसे शान्ति से बैठने नहीं देता। उसने सोचा, क्या इस युग में कोई रातों रात

धनी नहीं हो सकता ? उसने सोच कर देखा कि हो सकता है । डरबी का टिकट ले लिया जाय, तो कैसा रहे ? फिर विचार आया कि टिकट लेने से ही कोई 'प्राइज' नहीं मिल जाता, किन्तु टिकट लेने के साथ-साथ यदि किसी योगी का आशीर्वाद प्राप्त कर लिया जाय, तो सब काम बन जाय ।

अब उसे इस बात की तलाश रहने लगी कि कोई शक्तिशाली योगी मिले, तो उसका आशीर्वाद प्राप्त कर डरबी का टिकट ले लिया जाय। यदि सीधे-साधे योगी के आशीर्वाद से रुपये मिल गये, तो उसमें बड़ी दिक्कतों का सामना है । क्योंकि पुलिस पूछेगी कि धन कहाँ से आया ? परन्तु यदि डरबी की लाटरी से धन मिला, तो किसी को कुछ कहने का मौका न रहेगा । उसने अपनी इस योजना के अनुसार ज्ञानानन्द बाबा का आशीर्वाद लेकर एक डरबी का टिकट खरीद लिया और बेचैनी से परिणाम की प्रतीक्षा करने लगा ।

ज्ञानानन्द बाबा गेरुआ धारी होने पर भी पक्के संसारी जीव थे। लोगों में धर्म के लिये जो एक उन्माद-सा है, उससे फायदा उठाना, और लोगों की कमजोरियों को भुना कर खाना ही उनका पेशा था। वे समझते थे कि एक सफेद चमड़ा वाला चेला मिलना उनके व्यवसाय के लिये बहुत अच्छा है । ऐसा होने से भारतीय चेलों पर रोब जमता है । पौने दो सौ वर्ष तक यहाँ पर अंग्रेजों का राज्य होने के कारण भारतीयों में जो गुलामी की मनोवृत्ति उत्पन्न हो चुकी है, बाबाजी उसका भली भाँति फायदा उठाना जानते थे ।

बाबाजी अपने को अलौकिक शक्ति सम्पन्न बतलाते थे, पर साथ ही कहीं पोल न खुल जाय, इसलिये बताया करते थे कि अपनी ऋद्धि-सिद्धि का उपयोग करना बहुत ऊँचे दरजे का काम है । इस बहाने से बाबाजी कभी अलौकिक कार्य नहीं करते थे । वे कहते थे कि ऐसा करना भगवान की मर्जी में हस्तक्षेप करना होगा ।

एलेकजेन्डर स्वामी ज्ञानानन्द के पास न मालूम किस आशा से

प्रेरित होकर आने जाने लगा था। वह यह नहीं चाहता था कि स्वामीजी उसके लिये ईंटों को सोना कर दें, या कोयले को हीरा कर दें। वह तो केवल इतना ही चाहता था कि उसके खरीदे हुए डरबी के टिकट को इस प्रकार अभिमंत्रित कर दें, कि उसे ही पुरस्कार मिले। आखिर पुरस्कार तो किसी न किसी को मिलेगा ही, फिर यदि उसीको मिल जाय, तो इसे खुदा की खुदाई में हस्तक्षेप नहीं कहा जा सकता।

उसने स्वामीजी को बार-बार इसके लिये कहा, तो स्वामीजी ने या तो विषय बदल दिया, या विषय से अलग कोई आध्यात्मिक बात छेड़ दी। एलेकजेंडर बहुत कोशिश करता था कि वह स्वामीजी के बागाडम्बरयुक्त व्याख्यान के गूढ़ अर्थ को समझे, पर उसकी समझ में कुछ भी नहीं आता था। जितनी ही उसे स्वामीजी की बातें समझ में नहीं आतीं, उतना ही वह समझता था कि स्वामीजी कोई बहुत ऊँची और गम्भीर बात कह रहे हैं। ऐसा समझने के कारण उसकी श्रद्धा और भी बढ़ जाती।

इसी धुन में एलेकजेन्डर ने एक दिन डरबी का टिकट खरीद लिया, और उस टिकट को लेकर स्वामीजी के पास आया। स्वामीजी ने उस टिकट को हाथ में लिया, फिर हँस कर कुछ भुनभुनाते हुए टिकट लौटा दिया। एलेकजेन्डर ने समझा कि स्वामीजी ने आशीर्वाद दे दिया। फिर भी वह बराबर जब भी स्वामीजी को अकेले में पाता, तो इस पर स्पष्टता के साथ कुछ कहने के लिये कहता था। कई बार तो स्वामीजी चुप रह गये, पर एक बार शायद उकता कर उन्होंने बाइबिल के ढंग पर यह कह दिया..."जिस बात की तुम्हें जरूरत है, वह तुम्हें जरूर मिलेगी, क्योंकि ईश्वर सब की जरूरतों को जानता है!"

इतनी बात एलेकजेन्डर के लिये यथेष्ट थी। उसने सोचा, अब अवश्य डरबी में विजयी होगा। अब तो बड़े जोरों से उसकी कल्पना का घोड़ा दौड़ने लगा। उसने पहली बात यह तय की कि इनाम मिलने पर वह नौकरी छोड़ देगा, और कुछ काम नहीं करेगा। वह जिस सामाजिक

परिस्थिति में पला था, उसमें काम करना एक जहमत समझी जाती थी। उसने तय किया कि पुरस्कार मिलने पर वह घर पर नहीं बैठा रहेगा, शिकार में जायगा और तरह-तरह के दूसरे मनोरंजन के साधन में व्यस्त रहेगा। वह पैसों के लिये फिक्र न करेगा? हाँ, अवश्य ही कुछ शेयर आदि खरीद लेगा। यह बंगला बहुत छोटा है, इसे या तो फिर से बनवायेगा या कोई नया बंगला खरीदेगा। चारों तरफ एक छोटा-सा बाग होना चाहिये। मकान के एक तरफ एक छोटा-सा बाग होना चाहिये। मकान के एक तरफ एक विराट गैरेज रहेगा, जिसमें मोटरें और मोटर सायकलें रहेंगी। अपने लिये एक मोटर, ऐलिस के लिये एक मोटर और बच्चों के लिये एक-एक मोटर सायकल। इसके अतिरिक्त मकान में रेडियो, चांदी का काम किया हुआ टेलीफोन आदि रहेगा। थोड़े में उसका जो घर होगा, वह प्रकृति के सीने में सभ्यता के एक सुन्दर हृदय की तरह होगा।

ऐलिस आजकल इतनी बदमिजाज हो गयी है कि सीधे से कोई बात ही नहीं करती। पुरस्कार मिलते ही यही ऐलिस कितनी मधुरभाषिणी हो जायगी? क्या वह पहले मधुरभाषिणी नहीं थी? थी तो पर रुपयों की कमी के कारण उसका मिजाज खराब हो गया है। बच्चे भी उसे आदमी समझने लगेंगे। पर वह उस समय किसी से भी अधिक बात नहीं करेगा। हाँ, स्वामीजी के पास बैठा रहेगा। वहीं से कभी ऐलिस और कभी बच्चे उसे मोटर पर बैठा ले जायेंगे।

वह सिर्फ इस प्रकार कल्पनाओं में ही डूबा रहता था, यह बात नहीं। इन दिनों वह जब तब घर में डींग भी मारा करता था..."अरे, यह अभाव चन्द रोज है! जल्दी ही हम लोगों पर कुमारी मरियम की कृपा होगी?" कह कर वह रसोई घर की चिमनी की ओर ताकने लगता था।

बच्चे रहस्य भरी दृष्टि से उसकी ओर देखते थे। ऐलिस ने जब दो-चार बार ऐसी बातें सुनीं, तो वह एक दिन कह बैठी..."साफ-साफ बताते

क्यों नहीं कि क्या बात है ? इस तरह पहेली क्यों बुझाते हो ?"

एलेकजेन्डर अपने गुरु की भाषा में कहने लगा...'परम शक्तिमान ईश्वर की लीला अपरम्पार है ? उसका न तो किसी ने पार पाया है, और न कोई पार पा सकता है !" इतना कह कर एलेकजेन्डर चुप हो गया।

ऐलिस इन बातों को सुन कर चुप हो जाती, और कुछ न समझ पा कर आँखें फाड़ कर पति को देखने लगती। पति के चेहरे पर एक निर्बोध तथा शून्य दृष्टि देख कर उसका हृदय एक अज्ञात भय से सिहर उठता। उसे यह डर मालूम होता कि कहीं ऐसा तो नहीं कि इनका दिमाग बिगड़ रहा है।

एलेकजेन्डर इसी प्रकार बार बार अपने भविष्य के सम्बन्ध में आशाजनक बातें कहता था। ऐलिस ने देखा कि और सब विषयों में पति का ज्ञान बिलकुल ठीक है। फिर इस प्रकार की दुराशा का पोषण क्यों करता है ? तो क्या हजरत ने भीतर ही भीतर कोई दाँव मारा है, या दाँव मारने जा रहे हैं ? इस दाँव में कितनी विपत्ति है ? ऐलिस को डरबी के टिकट के सम्बन्ध में कुछ पता नहीं था। इसलिये वह सोचने लगी कि न मालूम पति देवता क्या करने वाले हैं ?

एक दिन ऐलिस ने अकेले में पाकर पति से पूछा..."यह जो तुम बार बार कहा करते हो कि हालत सुधरेगी, सो क्या मामला है ? क्या तुम मजाक किया करते हो ?" कहकर वह पति के चेहरे की ओर बहुत गहराई के साथ ताकने लगी, मानो वह पति के अन्तरम विचारों को पढ़ डालना चाहती हो।

"मजाक क्यों करूँगा ?"

"फिर ?"

"सब उन्हीं की इच्छा है ? उनकी इच्छा हो जाने पर मूक भी वाचाल हो जाता है, और पंगु भी गिरि को लांघने लगता है ? यह तो कुछ भी नहीं है !"

"इसका अर्थ ?" स्वर में क्रोध लाते हुए ऐलिस ने पूछा। उसे इस समय अपने एक रिश्तेदार के यहाँ जाने में देर हो रही थी।

अन्त तक कुछ भी अर्थ नहीं खुला। कुत्ता जैसे हड्डी को अगोर कर बैठता है, किसी दूसरे कुत्ते को पास नहीं आने देता, उसी प्रकार एलेकजेन्डर ने डरबी के टिकट की बात सम्पूर्ण रूप से गुप्त रखी। ऐलिस अन्त में यह धारणा ले कर चली गयी कि शायद इन दिनों मियाँ कुछ अपनी आमदनी कर रहे हैं। उसी का इस प्रकार प्रचार कर रहे हैं।

स्वामी ज्ञानानन्द के पास अधिक आने जाने पर भी एलेकजेन्डर डरबी की लाटरी में पुरस्कार न पा सका। मुफ्त में उसके कुछ रुपये गये। एलेकजेन्डर इस विषय में इतना दृढ़ विश्वास किये हुए था, कि पहले तो वह यह विश्वास करने के लिये तैयार नहीं हुआ कि वह हार गया है। यों उसने मन ही मन जो सैकड़ों मंसूबे बाँध रखे थे, सब मिट्टी में मिल गये।

पर धीरे धीरे यह कटु सत्य उसके सामने स्पष्ट हो गया, और साथ ही उसके दिमाग में एक भयंकर कांड भी मच गया। तो क्या उसे इसी प्रकार सारी उम्र एक क्लर्क का काम करना पड़ेगा ? मोटर, रेडियो यह सब स्वप्न ही रहेगा ? ऐलिस के चेहरे पर स्निग्ध हँसी कभी नहीं दिखाई पड़ेगी ? इस चिन्ता में दो एक दिन तक तो उससे कुछ खाया भी नहीं गया।

ऐलिस उसके रंग ढंग देख कर डर गयी। उसे अब भी डरबी के टिकट वाली बात का पता नहीं था। उसने डाक्टर बुलाना चाहा, पर एलेकजेन्डर ने कहा, कि डाक्टर कुछ नहीं कर सकता।

एलेकजेन्डर कई महीने तक इस धक्के को संभाल नहीं पाया। अवश्य वह यंत्र चालित की तरह दफ्तर में जाता था, अपना काम करता था, खाता पीता था, किन्तु उसके मुंह की तरफ देखने पर ज्ञात होता था कि वह एक कल तथा निर्जीव प्रस्तर का खंड मात्र है। ऐलिस पहले पहल कुछ चिन्तित रही, पर उसने जब यह देखा कि इस प्रकार से गुमसुम

रहना उसके पति का स्वभाव हो गया है, तो उसे अब इसकी भी फिक्र नहीं रही। बल्कि परेशानी के बजाय अब वह कुछ नाराज सी रहने लगी।

एलेकजेन्डर सभी समय अपने स्वप्न-भंग की बात सोचा करता था। कल्पना के ताना बाना से उसने अपने लिये जिस इन्द्रधनुषी जगत की सृष्टि की थी, वह एक ही मुहूर्त में विध्वस्त हो गयी। उसका चेहरा आधा रह गया, आँखें धंस गयीं, वह मानो अब जीवित मनुष्य ही नहीं रहा।

पर एक दिन वह अपनी निराशा से ऊपर उठ गया। मानो कोई जादू हो गया, जिससे शीघ्र ही उसने आलस्य तथा जड़ता से छुट्टी पा ली। नये उद्यम से फिर उसने आशा-महल की रचना शुरू की। उसके मन में यह धारणा बैठ गयी कि वह एक न एक दिन अतुल ऐश्वर्य का अधिकारी अवश्य होगा, चाहे ऐसा जैसे भी हो। वह फिर स्वामी ज्ञानानन्द के दर की खाक छानने लगा।

स्वामी ज्ञानानन्द बड़े घुटे हुए थे। बोले..."इतने दिन तक तू कहाँ था?" स्वामीजी अपने शिष्यों को तू कह कर सम्बोधित किया करते थे, और अक्सर साला वाला भी कह जाते थे। भक्त तथा शिष्यगण इसका कोई बुरा नहीं मानते थे, क्योंकि वे समझते थे कि जो व्यक्ति दिन रात ईश्वरीय चिन्ता में डूबा हुआ रहता है, उसके लिये इस प्रकार मानवीय सम्बन्धों को भूल जाना और गलत सम्बन्ध बताना आश्चर्यजनक नहीं है।

एलेकजेन्डर ने कहा..."फादर, मेरी मति भ्रष्ट हो गयी थी!" एलेकजेन्डर रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय का था। मूर्ति पूजा उसकी मज्जा तक में घुसी हुई थी, जिसे तिसे, विशेषकर साधुओं को, 'फादर' कहते उसकी जीभ जरा भी संकुचित नहीं होती थी।

स्वामीजी ने एक बार कनखी से भक्त मंडली की ओर देख लिया। वे समझ गये क्योंकि एकाएक भक्त वृन्द के बीच का कोलाहल रुक गया। सभी इस गोरे शिष्य तथा स्वामीजी के बीच में क्या वार्त्तालाप होता है, उसे सुनने के लिये कान खड़े कर प्रतीक्षा करने लगे। उनके चेहरे पर

एक तृप्ति का भाव खेल गया। उन्होंने नाटकीय ढंग से पूछा..."ऐसा क्यों हुआ, मेरे बेटे ?"

"मैं डरबी में हार गया !"

"अच्छा !" स्वामीजी ने एक सर्वज्ञता की हँसी हँसते हुए कहा... "मुझे मालूम था !"

"क्या जानते थे, फादर ?"

"मैं यह जानता था कि तुम्हारी साधना अभी पूर्ण नहीं हुई है। प्रत्येक सिद्धि के लिये साधना करनी पड़ती है। जब तक वह पूर्ण नहीं होती, तब तक सिद्धि नहीं होती ! यदि तुम किसी चीज को बिना साधना के प्राप्त कर लो, तो जानना कि वह तुम्हें नहीं मिली। प्रत्येक व्यक्ति की सिद्धि के पीछे जन्म-जन्मान्तर की साधना होती है। तुम सोचते होगे कि जिस व्यक्ति को डरबी का पुरस्कार मिला है, उसका कारण आकस्मिक है, किन्तु ऐसी बात नहीं। तुम यदि मेरी तरह सर्वज्ञ होते, तो तुम्हें मालूम होता कि जिस व्यक्ति को इस समय डरबी का पुरस्कार मिला, उसने बड़ी साधना की है और वह अतुल ऐश्वर्य के किनारे बैठा है। सिर्फ कुछ कसर थी, सो इस प्रकार पूरी हो गयी।" ...इसी लहजे में स्वामीजी न मालूम और क्या-क्या कह गये।

स्वामीजी की वाक्य धारा को बीच में ही रोकते हुए एलेकजेन्डर ने कहा . "पर, फादर, मैं तो......"

"पर वर कुछ नहीं ! तुम लोग पाश्चात्य के केंट, हेगेल, शोपेन, हावर आदि के लिये गर्व करते हो।"

एलेकजेन्डर ने इसके पहले इन लोगों के नाम कभी नहीं सुने थे। चौरंगी के चिराग 'स्टेट्स मेन' ने कभी इनका उल्लेख किया था, ऐसा उसे याद नहीं पड़ा। एक श्रेणी कि भारतीय ऐसे हैं, जो समझते हैं कि प्रत्येक सफेद चमड़े वाला व्यक्ति पाश्चात्य के ज्ञान विज्ञान के उच्चतम शिखर पर आरूढ़ है। वे यह नहीं जानते कि पछाँह की साधारण जनता साक्षर तथा समृद्धतर होने पर भी धर्म, विश्वास, कुसंस्कार में या किसी

भी क्षेत्र में साधारण भारतीयों से अधिक ऊपर नहीं है। स्वामीजी अवश्य काफी चलते हुए थे, और वे ऐसा नहीं सोचते थे, पर वे जानते थे कि उनके भक्त ऐसा ही समझते हैं, इसी लिये वे नाटकीय तरीके से कहते गये..."तुम लोग कैंट, हेगेल, शोपेन हावर के लिये गर्व करते हो, पर वे क्या हैं ? वे केवल रहस्य सागर के किनारे पत्थर बटोर रहे हैं। तुम्हारा दर्शन शास्त्र जहाँ खतम होता है, हमारा वहाँ पर शुरू होता है। तुम्हारे कैंट, हेगेल की 'कैटेगरी' को टटोल कर क्या मिलेगा ? जो कुछ मिलेगा, वह तुम्हारे लिये बहुत बड़ी बात हो सकती है, पर हमारे घर-घर में ऐसे ज्ञानी हैं।......"

इस प्रकार स्वामीजी घंटों बकते गये। उनके व्याख्यान का डरबी के टिकट के साथ कोई सम्बन्ध नहीं था, पर स्वामीजी को तो रोब जमाना था। उन्हें इसकी क्या परवाह थी ?

जब व्याख्यान इस प्रकार चलते-चलते बन्द हो गया, तो शिष्यों ने देखा कि स्वामीजी समाधिस्थ हो चुके हैं। सब भक्त एक-एक करके उनके चरणों पर गिर कर चले गये। अन्त तक एलेकजेन्डर बैठा रहा। फिर वह भी खुश-खुश चल पड़ा।

एलेकजेन्डर दफ्तर में जाता था, काम भी करता था, पर इन दिनों कामों में उससे बहुत गलती होती थी। इसी कारण उसे बार-बार डांट सहनी पड़ती थी। पर उसको इसकी परवाह नहीं थी। पत्नी भी उससे सदा चिढ़ी रहती थी।

इसी प्रकार काफी दिन बीत गये। एक दिन उसके जीवन में वह अपूर्व बात हुई, जिसकी उसे बहुत दिनों से प्रतीक्षा थी। राह चलते उसे एक चाभी पड़ी हुई दिखाई दी। चाभी पड़ी के बजाय खड़ी थी, इससे एलेकजेन्डर ने उसका बहुत भारी मूल्य लगाया। अकस्मात् उसके सारे शरीर में रोमांच हो आया। इसीके लिये तो वह इतने दिनों से प्रतीक्षा कर रहा था। इसी कुंजी से उसके भाग्य का द्वार खुलेगा, इस विचार ने उसको इतना वश में कर लिया कि वह और आगे कुछ नहीं सोच सका।

उसने चारों तरफ ताक कर देखा कि कहीं उसे कोई देख तो नहीं रहा है, और जब उसने देखा कि इर्द-गिर्द कोई नहीं है, तो सावधानी से चाभी उठा ली, और जेब में रख कर जल्दी-जल्दी चलने लगा। वह उस समय बहुत ही उत्तेजित था।

घर जाकर उसने सबको सम्बोधित करते हुए कहा...'अब की बार हमारे ऊपर कुमारी मरियम की कृपा हो गयी !"

बच्चे इस पर कुछ उत्तेजित हुए, पर ऐलिस ने इस कथन को कोई महत्व नहीं दिया। इस प्रकार की बातें सुनते-सुनते उसके कान पक गये थे। उसने जोश में आकर कहा ..."बेकार की बातें न करो ! चुपचाप बैठे चाय पियो !'

एलेक्जेन्डर हँसा। यह हँसी वैसी ही थी, जैसी बच्चों की डींग सुन कर बड़े बूढ़े हँसते हैं। फिर वह इतमिनान से चाय पीने लगा। मन-ही-मन अधैर्य हो कर वह उस घड़ी की प्रतीक्षा करने लगा, जब सब लोग घरसे निकल जायँ, जरा सन्नाटा हो जाय और वह अपना प्रयोग शुरू करे। उसने जेब में हाथ डाल कर देखा कि कुंजी खो तो नहीं गई। फिर जब देखा कि कुंजी है, तब वह सन्तुष्ट हो कर चाय पीने लगा।

ऐलिस शाम की पोशाक पहने हुए तैयार थी। वह चली गयी। बच्चे भी खेलने कूदने चले गये। एलेकजेंडर ने जब अच्छी तरह देख लिया कि अब एकान्त हो गया है, तब उसने जल्दी से जेब से चाभी निकाली, और एक के बाद एक उस चाभी को घर के सब बक्सों के तालों पर आजमाने लगा। घर में तालों की संख्या कम नहीं थी, इसलिये इस प्रयोग में काफी समय लगा। वह पसीने से तर बतर हो गया, पर इस चाभी से घर का एक ताला भी नहीं खुला। पर वह इस परिणाम से हतोत्साह नहीं हुआ। उसने सोचा कि यह चाभी तो गलत नहीं हो सकती, उसी ने कहीं पर गलती की है। लडकों के आने का समय हो गया था इसलिये उसे उस दिन के लिये अपने प्रयोग को बन्द कर देना पड़ा। अगले दिन सवेरे वह फिर इस बात की ताक में था कि सन्नाटा

हो, तो वह फिर अपना प्रयोग शुरू करे, पर सन्नाटा न हुआ। ऐलिस सवेरे कहीं नहीं जाती थी। इस कारण उसे दुखी होकर दफ्तर जाना पड़ा। वहाँ से लौट कर उसने फिर प्रयोग किया।

इस प्रकार उसने दो तीन दिन तक घर के तालों पर प्रयोग किये, पर चाभी से न तो कोई ताला खुला और न कोई बक्स।

वह जरा सोचने लगा। चाभी पर उसका विश्वास बढ़ गया। उसे अपनी बेवकूफी पर हँसी आई। ओह, यह चाभी मकान के तालों के लिये थोड़े ही है? यदि मकान के तालों में यह चाभी लग भी जाय, तो उससे उसे फायदा ही क्या होगा?

उसने सोचा कि कदाचित दफ्तर के तालों तथा बक्सों में यह चाभी लग जाय। देखना चाहिये।

पर यह काम उतना आसान नहीं था। फिर भी वह निराश नहीं हुआ। मौका देख कर वह चाभी को दफतर के तालों और बक्सों पर आजमाने लगा। सफलता नहीं मिली। फिर भी उसने कोशिश नहीं छोड़ी। एक दिन दफ़्तर के एक चपरासी ने उसे इस प्रकार अपनी चाभी को आजमाते देख लिया, उसे कुछ सन्देह हुआ। साहब बक्स खोल रहे हैं। इसमें आश्चर्य की क्या बात थी?

पर जब साहब की बड़ी कोशिशों के बाद भी बक्स नहीं खुला, तब चपरासी अपनी गुप्त जगह से साहब को ताला खोलने में सहायता देने के लिये निकल पड़ा। पर इसका नतीजा उलटा ही हुआ। चपरासी को देख कर एलेकजेंडर जल्दी से बक्स छोड़ कर उठ खड़ा हुआ। उसके डरे हुए चेहरे को देख कर चपरासी को आश्चर्य हुआ। उसने कहा..."दीजिये न, चाभी दीजिये! मैं आजमा कर देखूँ।"

"रहने दो, अभी जरूरत नहीं है!" कह कर फ्रैंसिस आँधी की तरह निकल गया। यह स्पष्ट था कि साहब बहुत उत्तेजित था। चपरासी ने हतबुद्धि होकर चारों तरफ देखा, फिर कुछ समझ कर हट गया। उसके मन में एक खटका लगा।

जब एलेकजेंडर की चाभी दफ्तर के किसी बक्स या ताले में नहीं लगी, तो वह चाभी को इधर-उधर भी आजमाने लगा। इस चाभी को आजमाने के लिये वह एक तरफ चोरों की तरह चतुरता से काम लेने लगा। न केवल वह मौका देख कर अपने मित्रों के घर के तालों तथा बक्सों पर चाभी लगाने लगा बल्कि वह अपरिचितों के घर में भी घुसने लगा। ताला देखते ही उसका हाथ खुजलाने लगता था, और वह किसी भी प्रकार अपने को संभाल नहीं पाता था। उसे न मालूम कैसे यह दृढ़ धारणा हो गयी थी कि इस चाभी लगाने की सफलता पर ही उसका भाग्य निर्भर है। ईश्वर ने यह चाभी उसे दया करके दे दी है, अब उसे काम में लाना या न लाना उसके हाथ में है।

एलेकजेंडर पागल सा हो कर जहां कहीं भी ताला देखता, चाभी को आजमाता।

एक दिन इसी प्रकार दफ्तर के एक ताले पर अपनी चाभी की आजमाइश करते हुए वह पकड़ लिया गया। बड़े साहब ने कई बार उसकी इस हरकत के बारे में सुना था, पर वे इस पर विश्वास नहीं करते थे। अबकी बार चपरासी ने उनको यह बात प्रत्यक्ष दिखला दी।

बड़े साहब ने उससे जवाब तलब किया..." क्यों, जी, तुम इस बक्स को खोलने की कोशिश क्यों कर रहे थे? तुम्हारा इस बक्स से क्या ताल्लुक है?"

एलेकजेंडर की ऐसी हालत हुई कि काटो, तो लहू नहीं। जवाब क्या था जो वह देता। वह थरथर कांपने लगा, और चुप रहा। उसकी जीभ की नोक पर बातें आईं और रह गयीं।

नतीजा यह हुआ कि बड़े साहब बहुत बिगड़े। वे अधिक इस कारण बिगड़े कि वे स्वयं ऐंग्लोइंडियन थे। और समझते थे चोर ऐंग्लोइंडियन हमारे समाज के लिये कलंक है। जो कुछ भी हो, एलेकजेंडर की नौकरी चली ही गई, साथ ही उसे चोर आदि की उपाधियां भी मिलीं। पर उसे इसका कोई मलाल नहीं हुआ। उसने मन ही मन कहा कि एक दिन वह

दिखला देगा कि चोर है या और कुछ। कल यदि वह अकस्मात् लखपति हो जाय, तो यही बड़े साहब उसे बुला कर कितनी कदर करेंगे ! हो, हो, हो, हो, वह ठठा कर हंस पड़ा।

घर लौट कर उसने ऐलिस से बहुत शान्त तरीके से यह बात बता दी कि उसकी नौकरी चली गयी, मानो यह कोई दुर्भाग्य न हो। पहले तो ऐलिस ने सोचा कि वह यों ही डरा हुआ है, पर बाद को वह समझ गयी।

"क्यों ?" आँखों को फाड़ कर ऐलिस ने पूछा।

"कुछ नहीं, कुमारी मरियम की ऐसी ही कृपा हुई !" कह कर उसने अद्‌भुत तरीके से अट्टहास किया। जब तक चाभी उसके पास थी, तब तक उसे काहे की फिक्र थी। वह जानता था कि इसी चाभी की बदौलत वह एक न एक दिन अतुल सम्पत्ति का अधिकारी होगा। नौकरी तो वह छोड़ देता ही, पर अपने से छूट गयी, यह अच्छा ही हुआ। इस तरह उसने इस घटना को सौभाग्य के रूप में लिया, क्योंकि अब वह पूरा समय चाभी को आजमाने में लगा सकता था।

पति की यह दशा देख कर ऐलिस के हाथ पैर फूल गये। पति से बातें करना व्यर्थ है, यह जान कर वह मामले की पूरी खोज करने के लिए एलेकजेंडर के बड़े साहब से मिलने गयी। अगले दिन ऐलिस ने पति से कहा..."मैं तुम्हारे बड़े साहब से मिल आई। सब समझा दिया। कल से काम पर जाना। अब आगे कोई बखेड़ा न करना !"

एलेकजेंडर ने इन बातों को अवाक हो कर सुना। फिर बिगड़ कर बोल उठा..."तुम्हें जाने की क्या जरूरत थी ? फजूल के लिये उसकी खुशामद की। मैंने तो जान बूझ कर नौकरी छोड़ दी थी। मैं अब गुलामी करने नहीं जाता !"

वह जिस प्रकार बैठा था, उसी प्रकार बैठा रहा। टस से मस नहीं हुआ।

ऐलिस ने निराशा के साथ कहा...."तो बच्चों का क्या होगा ? राबर्ट, आर्थर, हेनरी..."

थोड़ी देरके लिये एलेकजेन्डर मानों इस जगत में उतर आया। उसकी भौहें तन गयीं। बोला..."मैं सब देख लूँगा। तुम जिक्र न करो!" इतना कहने के बाद उसमें इस बात की बड़ी तीव्र इच्छा हुई, कि वह अपनी स्त्री से उस अलौकिक चाभी के मिलने की बात बताये, पर उसने बड़े कष्ट से इस इच्छा का दमन किया।

ऐलिस ने कहा..."कुछ मुझे भी तो मालूम हो कि कैसे क्या होने जा रहा है? मुझे भी तो कुछ-कुछ जानने का अधिकार है!"

"रहने दो!" एलेकजेन्डर ने कहा। फिर कुछ रुक कर बोला... "यथासमय सब मालूम हो जायगा!"

ऐलिस अपने भाग्य-नक्षत्र को धिक्कार ने लगी!

इधर गृहस्थी की हालत बिगड़ती गयी। मजबूरन ऐलिस ने टाइपिस्ट की नौकरी कर ली। शादी के पहले वह टाइपिस्ट ही थी।

एलेकजेन्डर को सभी निठल्ला तथा बेकार समझने लगे। जो कुछ भी हो, वह अपने परिवार से प्रेम करता था, इसीलिये घरकी हालत देख कर उसका हृदय फटने लगता था। पर दुखसे प्रेरित हो कर फिर से नौकरी करने की बात नहीं सोचता था। वह अब और भी जोरों के साथ इधर-उधर अपनी चाभी की आजमाइश करने लगा।

एक दिन रात में ऐलिस सो रही थी। अचानक उसे कुछ खट-खट की आवाज सुनाई पड़ी। उसने सोचा कि चोर है। जल्दी से टार्च जलाया, तो वहाँ चोर के बजाय स्वयं एलेकजेन्डर बच्चों के एक बक्स को अपनी चाभी से खोलने की कोशिश करते हुए दिखाई पड़ा।

ऐलिस सिहर उठी। उसे भय हुआ कि कहीं उसका पति पागल तो नहीं हो गया। उसने पूछा..."इतनी रात को यहाँ क्या हो रहा है?"

"कुछ नहीं, यों ही।"

"यों ही क्या?"

"कुछ नहीं।"

एलेकजेन्डर कोई सन्तोषजनक उत्तर न दे सका।

ऐसा अक्सर होने लगा। अन्त में ऐसा भी हुआ कि एलेकजेन्डर पड़ोसियों के मकान में चाभी आजमाते हुए कई बार पकड़ा गया।

अन्त में बाध्य हो कर ऐलिस ने पति को पागलखाने भेज दिया। अब वह पहले की ऐलिस नहीं थी। वह अब दिन रात काम करती और चेष्टा करती कि बच्चों को कष्ट न हो।

राँची के पागलखाने को ठीक पागलखाना नहीं कहा जा सकता। इसे पागलों का अस्पताल कहना ही उचित होगा। राँची का यह पागलखाना मुख्यतया गोरों और अधगोरों के लिए है, पर इसमें उच्च श्रेणी के भारतीय भी मोटी फीस देने पर रखे जाते हैं।

एलेकजेंडर को इस पागलखाने में एक कमरा दिया गया। वह कोई मार पीट करने वाला पागल नहीं था, इसलिये खुला ही रखा जाता था। एलेकजेंडर को ऐसा प्रतीत हुआ कि यह अजीब जगह है, और उसके अलावा यहाँ पर सभी पागल हैं। पागलखाने में नयी व्यवस्था के अनुसार पुरुष और स्त्री मिल सकते थे। इसलिये पागल तथा पगलियाँ दोनों यहाँ पर थीं। यहाँ तरह तरह के पागल थे। एक स्त्री ऐसी थी, जिसकी एकमात्र गलती यह थी कि वह अपने को स्काटों की रानी मेरी समझती थी, और इसी धारणा के अनुसार उठने बैठने तथा चलने की कोशिश करती थी। सारे पागलखाने में एक भी चींटी या किसी तरह का कीड़ा नहीं मिल सकता था, क्योंकि कुछ पागलों को चींटी तथा कीड़े पकड़ने की धुन थी। वे सबेरे से शाम तक इसी काम में लगे रहते थे। चींटियों या कीड़ों को देखते ही वे उन्हें उठा कर जेब में भर लेते थे। पर चींटियाँ भला वहाँ रहना क्यों चाहतीं? वे निकल आती थीं। इस प्रकार जब पागल देख लेते थे कि जेब से चींटियाँ भाग जाती हैं, तो वे उन्हें पकड़ कर खा जाते थे।

कुछ पागलों को हमेशा बाथरूम में ही बैठे रहने की धुन थी। खाने की घंटी पर ही निकलते थे।

एलेकजेंडर ने शाम को देखा कि पागलखाने के मैदान में अच्छा खासा

फुटबाल हो रहा है। उसे देख कर आश्चर्य हुआ कि कुछ लोग अपनी ही तरफ गोल करने की कोशिश कर रहे थे।

एलेकजेंडर ने ये बातें देखीं। फिर भी उसे अधिक फिक्र नहीं हुई, क्योंकि उसके पास वह अलौकिक चाभी मौजूद थी। एलेकजेंडर को इस बात की बहुत खुशी हुई कि वहाँ बहुत से ताले थे। यदि ये ताले न होते, तो उसके लिये समय काटना मुश्किल हो जाता। पर पागलखाने के पहरेदार उसे चाभी लगाने से रोकते थे। इसलिये उसे बड़ी सावधानी से अपना काम करना पड़ता था। इसी कारण महीनों तक वह यहाँ के सब तालों को आजमा नहीं पाया।

अन्त में जब उसे पागलखाने में एक वर्ष से अधिक हो चुका, तो एक ताले में उसकी चाभी लग गयी। यह ताला उसके कमरे का ही ताला था। जेल तथा पागलखाने में नियमानुसार समय समय पर ताले बदले जाते हैं। तदनुसार यह ताला दो ही दिन पहले उसके कमरे में लगाया गया था। ताला खुलते ही उसे बहुत खुशी हुई, उसकी आँखों में हर्ष के मारे खून चढ़ आया। वह वहीं गिर पड़ा। फिर नहीं उठा।

ऐलिस को यथासमय पागलखाने के अध्यक्ष की ओर से इत्तला मिली कि उसका पति हृदय की गति रुक जाने के कारण मर गया। पति के अन्य सामान के साथ वह चाभी भी उसे मिली, भाग्य की चाभी। सचमुच इसी चाभी की बदौलत एलेकजेंडर ने अपने दुर्भाग्य से छुटकारा पाया था, एक गरीब क्लर्क के भाग्य से।

# खिलौना कारपोरेशन

मंत्रिमंडल के सभी मंत्री एक से नहीं थे। यही तो मुसीबत थी, नहीं तो खिलौने के व्यापारियों का तो काम मिनटों में बन जाता। देश के स्वतन्त्र होने का यही तो अर्थ था, कि देशी उद्योग धंधे पनपें। पर यहाँ तो लोग समझते ही नहीं थे। मंत्रियों में से कुछ, जैसे रामाश्रे बाबू, अनोखेलाल, पद्मकान्त तो समझाने पर समझ जाते थे। बढ़िया मोटर पर इनके घर या दफ्तर में पहुँचो तो ये लोग मिलते तो थे। पर कुछ तो बिलकुल मनहूस प्रकृति के थे। घंटों मोटर लेकर खड़े रहो, तो भी ये नहीं पूछते थे। बड़ी देर बाद तो सेक्रेटरी से भेंट होती थी। पर वह भी कुछ साफ-साफ नहीं कहता था, कि भेंट होगी या नहीं। भेंट हुई भी, तो सैकड़ों दोष निकाले जाते। ऐसे बेमुरौवत लोगों में हरगोविन्द बाबू और रामकृष्ण बाबू प्रमुख थे।

कुछ भारतीय व्यापारियों ने एक कारपोरेशन बनाया था। इनका उद्देश्य यह था, कि देश से जो करोड़ों रुपये बच्चों के खिलौनों के मद में चले जाते हैं, वे न जायें। कारपोरेशन के डायरेक्टरों में मारवाड़ी, बिहारी, संयुक्त प्रान्तीय, बंगाली, सभी लोग थे। यह एक अखिल भारतीय कम्पनी थी।

पूँजी जरूरत से ज्यादा थी। ब्लैक से पैदा की हुई लाखों की रकम थी। पर काम अटक इस कारण रहा था, कि कारखाने के लिये न तो कोई उपयुक्त मकान मिल रहा था, और न जमीन ही मिल रही थी, जिस पर झट कारखाना बन सके। इसी के लिए मंत्रिमंडल की सहायता की आवश्यकता थी।

कारपोरेशन के प्रधान डायरेक्टर, रामनाथ केडिया, ने पहले तो राष्ट्रीय पत्रों में इस सम्बन्ध में इस आशय के नोट निकलवाना चाहा, कि क्या बात है, कि देश के बच्चों को देशी खिलौने सप्लाई करने की इस महान् योजना को कांग्रेसी सरकार की ओर से प्रोत्साहन नहीं मिल रहा है, पर एक पत्र ने भी उन्हें अनुगृहीत नहीं किया। लेकिन केडिया जी जल्दी हार मानने वाले व्यक्ति नहीं थे।

वे स्वयं अखबारों के दफ्तरों में पहुँचने लगे। पहले वे मार्निंग स्टार के दफ्तर में पहुँचे। यह पत्र पहले नर्म दल का था। जब जब राष्ट्रीय आन्दोलन हुए, इसने खुल कर उनका विरोध किया, और सरकारी जुल्म का समर्थन किया। १९४२ के दिनों में तो यह साम्राज्यवाद का मुख पत्र ही हो गया था। कम्युनिस्टों से बढ़ कर यह लोकयुद्धवादी हो गया था। पर १९४७ से, जब ऐटली ने यह घोषणा की कि अब शक्ति हस्तांतरित होगी, तब से यह पूरा कांग्रेसी हो गया था।

इसके सम्पादक ने केडिया जी से कहा...."हम कांग्रेस सरकार का पूरा समर्थन करते हैं। हम उसकी आलोचना में विश्वास नहीं करते।" इतना कह कर, बेरुखी से एक टाइप किये हुए तार या लेख को पढ़ने लगे।

केडिया जी इतने से निराश होने वाले नहीं थे। बोले...."तो हमीं कब कांग्रेस की आलोचना में विश्वास करते हैं। हम तो बस तजवीज रखना चाहते हैं।" फिर गरमा कर बोले...."क्या आप नहीं समझते, कि देश के बच्चों को देशी आदर्शों पर बने हुए कलात्मक खिलौनों की आवश्यकता नहीं?"

"क्यों नहीं? इसमें क्या शक है? पर...."....सम्पादक जी बोलते बोलते रुक गये।

केडिया जी बोले..."आपको मालूम है, कि हमारी योजना में बच्चों के लिये प्लैस्टिक के चर्खे, करघे आदि बनेंगे। और गांधी जी, नेहरू जी आदि की मूर्तियाँ भी तैयार की जायेंगी। इसके लिये हमने एक रिजर्व विभाग खोला है, जिसका मूलमन्त्र, यह है, जैसा खिलौना, वैसा बच्चा, यानी

वैसा ही बच्चे का भविष्य। हम अपने रिसर्च विभाग द्वारा इस बात का पता लगवा रहे हैं, कि गाँधी जी, नेहरू जी, राजेन्द्र बाबू, नेताजी, राजगोपालाचारी आदि देश के महापुरुष बचपन में किस प्रकार के खिलौनों से खेलते थे। बस, हम उसी प्रकार के खिलौने तैयार करेंगे।"

अब सम्पादक को भी कुछ दिलचस्पी पैदा हुई। बोले..."तो यह कहिये, कि आपके विचार बहुत पैने हैं!"

केडिया जी का चेहरा चमक उठा। बोले..."हमारा उद्देश्य बच्चों के जीवन में एक क्रांति लाना है। १५ अगस्त १९४७, के बाद अब वे पुराने ढंग नहीं चल सकते। अब हमारे बच्चे स्वतन्त्र देश के बच्चे हैं। उन्हें अब दूसरे ही तरीकों से बड़ा होना है।"

इस प्रकार केडिया जी ने अपनी बात समझा दी। सम्पादक जी नोट को कुछ बदल कर छापने के लिये राजी हो गये। कल के ये माडरेट उर्फ कांग्रेस विरोधी पत्र अब 'मोर रायलिस्ट दैन दि किंग' के तरीके पर कांग्रेसियों से भी अधिक कांग्रेसी हो चुके थे। ये पूरा हाँ में हाँ मिलाने के कायल थे।

केडिया जी सन्तुष्ट हो कर बिदा हुए, पर इसके बाद वे जो प्रान्तीय कांग्रेस के मुखपत्र, कांग्रेस ट्रिब्यून, के दफ्तर में पहुँचे, तो वहाँ उनकी दाल नहीं गली। वहाँ जो महाशय सम्पादक थे, वे रोज मजदूरों और हड़तालों के विरुद्ध लिखा करते थे। पर केडिया जी के साथ बात करते समय वे पूरे कार्लमार्क्स और लेनिन के चाचा बन गये। बोले..."और सब तो हम समझ गये, पर आपके कारखानों में मजदूरों की क्या हालत होगी, इसे जाने बगैर हम आपके पक्ष या विपक्ष में कुछ नहीं कह सकते। हमें तो यह देखना है, कि आपकी योजना से साधारण व्यक्ति को क्या लाभ हानि होगी। समझे न? हैं हैं हैं!"

केडिया जी मन ही मन कुछ असन्तुष्ट हुए। पर वे बोले.. "साधारण व्यक्ति के लिये ही तो सब कुछ हो रहा है। रहे मजदूर। सो उनके सम्बन्ध में जो महात्मा जी की राय, सो मेरी राय। उनका भी भला हो,

और हमारा भी भला हो ।"

इस प्रकार कह सुन कर केडिया जी वापस आये। पर न तो 'कांग्रेस ट्रिव्यून' में ही उनका समाचार छपा, न 'मार्निंग स्टार' में। हिन्दी पत्रों को तो केडिया जी एक व्यावहारिक व्यक्ति होने के नाते कुछ गिनते ही नहीं थे। वे जानते थे कि हिन्दी के राष्ट्रभाषा और राजभाषा स्वीकृत होने पर भी न मंत्रीगण ही हिन्दी पत्र पढ़ते थे, न उनके सेक्रेटरी ही। इस कारण हिन्दी पत्रों में किसी बात को निकलवाना अरन्य रोदन की तरह था। और उसका कोई अर्थ नहीं था। साथ ही वे यह भी जानते थे कि अंग्रेजी पत्रों में जो बात निकलेगी, वह हिन्दी पत्र में भी निकलेगी।

तब केडिया जी ने सोचा, कि अब सीधी उंगली से घी नहीं निकलेगा। इस लिये उन्होंने दूसरे उपाय का अवलम्बन किया।

चौथे दिन उन्होंने कारपोरेशन की बालक समिति की ओर से एक विराट दावत की व्यवस्था की। कहना न होगा, कि उस क्षण के पहले बालक समिति का कोई अस्तित्व नहीं था। केडिया जी ने अपनी आवश्यकता के अनुसार रात भर में इस समिति को पैदा कर दिया। इसका छपा हुआ विधान भी तैयार हो गया, और इसके अस्थायी पदाधिकारी भी बन गये। केडिया जी, कारपोरेशन के अन्य कई डायरेक्टरों और मंत्रिमंडल में से रामश्रे बाबू, अनोखेलाल तथा पद्मकान्त इसके संरक्षक थे।

शहर के गण्य मान्य सभी व्यक्तियों के लड़कों, लड़कियों को, सभी मंत्रियों को और सभी संपादकों को दावत दी गई थी। दावत गार्डेन पार्टी के रूप में थी। मन्त्री रामाश्रे सिंह इस अवसर के सभापति चुने गये थे। महात्मा जी, नेहरू जी आदि के सन्देश मँगाये गये थे।

शामिल होने वाले बालकों के सुविधार्थ दावत का समय सायंकाल चार बजे का रखा गया था। जाड़े का जमाना था, सो यह समय बहुत उपयुक्त समय था।

केडिया जी की सारी योजना सर्वांग सुन्दर थी। लौड स्पीकर का प्रबन्ध था। साथ ही स्थानीय रेडियो स्टेशन ने सारी कार्रवाई को 'रिले'

करने का प्रबन्ध किया था। केडिया जी ने रेडियो स्टेशन के डायरेक्टर से कहा..."साहब, मैं तो मूक सेवा में विश्वास करता हूँ। मुझे यह रिले विले पसन्द नहीं !"

पर स्टेशन डायरेक्टर ने कहा..."हमारे यहां बच्चों का प्रोग्राम होता है। उसी में यह रिले किया जायगा।"

केडिया जी बोले..."मैं तो गत पच्चीस साल से बच्चों में काम कर रहा हूँ ! जो मूक सेवा में मजा है, वह रिले में थोड़ा ही होगा !"

सच तो यह था, कि केडिया जी ने अभी साल भर से खिलौने के व्यवसाय की ओर ध्यान दिया था, क्योंकि इसमें ५०० फीसदी मुनाफे की सम्भावना थी। पर एक तरह से उनका कथन सत्य भी था, क्योंकि पच्चीस साल पहले उनका पहला लड़का पैदा हुआ था, और तब से बराबर लड़के, लड़कियां पैदा होती रही थीं। और इधर एक नाती भी हुआ था।

केडिया जी के इस नम्र विरोध पर भी स्टेशन डायरेक्टर नहीं माने। तब मजबूर हो कर, केडिया जी ने आत्मसमर्पण कर दिया।

मंत्रियों के आने की बात सुन कर, सभी सम्पादक आये। जिन सम्पादकों ने केडिया जी से सीधे मुँह बात भी नहीं की थी, वे भी आज केडिया जी से मिलने को लालायित हो रहे थे। केडिया जी ने इनका विशेष आदर किया, और मंत्रियों को यह दिखलाया, कि सभी सम्पादक उनके अनन्य मित्र हैं, और सम्पादकों को यह दिखलाया, कि सभी मन्त्री उनके प्रभाव में हैं। केडिया जी शिशु मनोविज्ञान चाहे कुछ जानते हों या न जानते हों, पर वे शिशुओं के पिताओं के मनोविज्ञान के अच्छे ज्ञाता थे।

इतने में श्रीमती केडिया आईं। वे यौवन पार कर चुकी थीं, पर यौवन की कमी प्रसाधन, साड़ी तथा हीरे मोती के गहनों से पूर्ति की गई थी। यह सब केडिया जी के आदेश के अनुसार हुआ था। श्रीमती केडिया गतयौवना थीं तो क्या, उनके साथ सुन्दरियों का एक झुंड आया था, जिनमें से किसी को केडिया जी ने अपनी लड़की, किसी को अपनी पतोहू,

किसी को अपनी साली इत्यादि बताया। केडिया जी ने इन सब का परिचय मंत्रियों से कराया, पर सम्पादकों से नहीं। केडिया जी जानते थे, कि किसकी किस हद तक खुशामद करनी चाहिये। वे जानते थे, कि ये बेचारे सम्पादक स्वतन्त्रता का दम भरने पर भी यशप्राप्त क्लर्कमात्र हैं, मंत्रियों का रुख देखकर चलते हैं।

सभा की कार्रवाई शुरू हो गई। मेजों के सामने मन्त्रीगण तथा विशिष्ट सज्जन बैठे। बच्चों के सामने पत्तलें लगायी गयी थीं। मेजों पर तथा पत्तलों पर मिठाइयां आदि लगी हुई थीं। बच्चों द्वारा संगीत, श्रीमती केडिया द्वारा स्वागत भाषण तथा मन्त्री रामश्रेष्ठ सिंह द्वारा अभिभाषण हुआ। केडिया जी के विशेष अनुरोध पर, मन्त्री अनोखेलाल और पद्मकान्त ने भी कुछ कहा।

अगले दिन अखबारों में इस उत्सव के विषय में दीर्घ समाचार तथा फोटो आदि निकले। खिलौनों की योजना भी निकली। दोपहर के समय कारपोरेशन के डायरेक्टरों की सभा हुई। उनमें केडिया जी ने हिसाब पेश किया। उत्सव पर करीब तीन हजार रुपये का खर्च दिखाया गया था। दो तीन डायरेक्टरों ने इस पर कुछ मुंह बिचकाया, पर केडिया जी ने हिसाब करके दिखला दिया, कि यदि केवल पर्चे निकाले जाते, तो इससे कहीं अधिक खर्च होता, और विज्ञापन इसका दसवां हिस्सा भी न होता। केडिया जी के व्यावसायिक बुद्धि पर सब को भरोसा था, इस कारण लोग चुप रह गये।

केडिया जी ने सभी डायरेक्टरों को आश्वासन दिया..."दो महीने के अन्दर हमें जमीन मिल जायगी। बस, आप खर्च की परवाह न करें। यदि सफलता न हुई, तो सारा खर्च मेरे जिम्मे।"

दो एक दिन के अन्दर श्रीमती केडिया के संरक्षकत्व में स्त्रियों की एक कांफ्रेंस हुई। कार्यक्रम क्या थी, सौन्दर्य प्रतियोगिता, फैशन प्रतियोगिता और दावत थी, जैसी स्त्रियों की अधिकतर कांफ्रेंसें हुआ करती हैं। तीन मंत्रियों की स्त्रियों के अतिरिक्त प्रधान मन्त्री रामकृष्ण बाबू की स्त्री तथा

सम्पादकों की स्त्रियां भी आई थीं।

रामकृष्ण बाबू की स्त्री, कमला देवी को यह गर्व था, कि वे प्रधान मन्त्री की स्त्री हैं, पर उनके अलंकार केडिया परिवार की स्त्रियों के अलंकारों से निकृष्ट थे। श्रीमती केडिया की एक अंगूठी के हीरे की कीमत में ही कमलादेवी के सारे अलंकार आ जाते। यहां तक कि अन्य मंत्रियों की स्त्रियों के शरीर पर भी उनके अलंकारों से अच्छे अलंकार थे। सब स्त्रियां उनकी खुशामद कर रही थीं, पर कमला देवी को अपने अलंकारों की निकृष्टता के कारण खुशी नहीं, बल्कि एक प्रकार की हीनता का बोध हो रहा था।

रामकृष्ण बाबू अपनी योग्यता तथा त्याग के कारण प्रधान मन्त्री के पद पर पहुँचे थे। वे कट्टर गांधीवादी रहे थे। उनमें आदर्शवाद था, पर उनकी स्त्री उनके आदर्शों को न समझती थीं, और न उनकी कद्र ही करती थीं। वह एक साधारण स्त्री थीं।

जब से रामकृष्ण बाबू प्रधान मन्त्री बने थे, तब से कमलादेवी का असन्तोष और बढ़ गया था। वे समझती थीं, कि अब रामकृष्ण बाबू को सभी तरह के मौके मिलते हैं, पर वे बेवकूफी से उन्हें नहीं अपनाते। आपस में काफी चख-चख रहती थी।

आज की इस कांफ्रेंस में कमलादेवी और भी दुखी हुईं। उनकी समझ में झूठी इज्जत का कोई अर्थ नहीं था। इन सुसज्जिता, अलंकार भार नमा स्त्रियों में वे अपने को निकृष्ट पा रही थीं। वह यह नहीं देख रही थीं कि सब स्त्रियों की आँखें उन्हीं पर लगी हुई हैं।

कांफ्रेंस की कारवाई शुरू हुई। श्रीमती केडिया ने अपने पति का लिखा हुआ स्वागत भाषण पढ़ा। कमलादेवी ने सभा का उद्घाटन किया। अपने भाषण में उन्होंने कहा कि देश को अब संयासी नेताओं की आवश्यकता नहीं है, स्वतन्त्रता का अर्थ स्पष्ट रूप से कम काम, अधिक उपभोग, पैसे, गहने, साड़ियाँ, सांस्कृतिक साधन, बच्चों के लिए अच्छे से अच्छे खिलौने आदि हैं।

कमला देवी ने जोरदार शब्दों में केडिया जी के खिलौनों की योजना सम्बन्धी बातों की प्रशंसा की, पर साथ ही यह कहा कि खिलौने यदि सस्ते न पड़ें, तो कुछ भी नहीं हुआ।

भाषणों के बाद दावत हुई। केडिया जी ने कमला देवी की बहुत प्रशंसा की, और हंसी के बीच में यह कहा कि स्त्रियों को उनकी सरलता और सीधेपन का अनुकरण करना चाहिये न कि श्रीमती केडिया का। यद्यपि कमला देवी कभी जेल नहीं गई थीं। हमेशा अपने पति के आन्दोलन में शिरकत करने का विरोध करती थीं। पर केडिया जी ने उनके त्याग तथा तपस्या की प्रशंसा की।

स्त्रियों की इस कान्फ्रेंस में खिलौनों के सम्बन्ध में भी एक प्रस्ताव पास हुआ।

इस प्रकार केडिया जी की चीजें पत्रों में अच्छी तरह आ गईं। केडिया जी के नाम से वैज्ञानिक रूप से बने हुए 'खिलौनों की चरित्र निर्माण में उपयोगिता पर कई लेख भी निकले। केडिया जी को इतनी फुर्सत कहाँ थी कि वे लेख लिखते, इस कारण उनके एक कर्मचारी मिस्टर सेन इन लेखों को लिखा करते थे। इन लेखों के शीर्षक इस प्रकार थे—

'खिलौनों के जरिये राष्ट्र निर्माण,' 'जैसा खिलौना, वैसा आदमी,' 'नाजी जर्मनी में खिलौने,' 'सोवियट रूस के खिलौने' इत्यादि। ये लेख इतने सुलिखित थे कि केडिया जी जल्दी ही इस सम्बन्ध के विशेषज्ञ मान लिये गये। उनका फोटो सभी पत्रों में छपा।

कुछ पत्रों ने केडिया जी से यह कहा कि वे उनके शिशु विभाग के लिये कुछ लिखा करें, पर केडिया जी ने पहले तो इन्कार किया, फिर जब अधिक अनुरोध किया गया, तो वे लेख लिखने पर राजी हो गये, और लेखों के रूप में अपने कारखाने का विज्ञापन करने लगे।

केडिया जी ने जमीन के लिये दरख्वास्त दी। इस दरख्वास्त में मंत्रिमंडल से खिलौनों की सारी योजना का ब्यौरा देकर यह कहा गया था कि अमुक स्थान पर शहर के उत्तर में कम-से-कम १० एकड़ जमीन

दी जाय। ऐसे जमीन नहीं मिल रही थी, इस कारण सरकार से यह अनुरोध किया गया था कि लैंड एक्वीसिजन ऐक्ट के मुताबिक जमीन दी जाय।

शहर के किसी भी तरफ जमीन खाली नहीं थी। लड़ाई के बाद से बड़ी तेजी से शहर फैल रहा था। चारों तरफ मकान बन रहे थे। केवल एक इसी तरफ कुछ चमार, धानक, कोरी आदि लोगों की बस्ती थी। प्रलोभन दिये जाने पर भी ये न जमीन बेचते ही थे, और न इनमें इतनी सामर्थ्य थी कि ये पक्के मकान बनवाते।

केडिया जी ने इनको समझाया था, पर इन्होंने जमीन बेचना नहीं चाहा था। कुछ राजी भी थे, पर एकाध के राजी होने से काम कहाँ बनता था? वहाँ तो दस एकड़ चाहिये था। तब केडिया जी ने इनको धमकाया था कि जमीन तो मैं लेकर ही मानूंगा। तभी से केडिया जी दौड़ रहे थे और अपने पैर के नीचे घास जमने नहीं दे रहे थे।

केडिया जी ने पत्रों में आन्दोलन जारी रक्खा, दरख्वास्त भी दे दी, पर इतने से कुछ नहीं हुआ। केवल प्रचार कार्य से क्या फायदा, जब तक कि माल ही तैयार न हो पाये। केडिया जी को यश में उतनी ही हद तक दिलचस्पी थी, जितना हद तक वह मुनाफे को बढ़ाने में सहायक हो। नहीं तो नाम लेकर क्या होगा। क्या धोखा खाया जाय! छिः, केडिया जी में नाम के व्यर्थ का मोह नहीं था, जैसा कि कुछ देशभक्तों में होता है। ये बेचारे देशभक्त जो मर मिटे, वे सर्वथा केडिया जी के पूज्य थे, पर वे उनके अनुकरणीय नहीं थे।

दरख्वास्त देने के दो दिन बाद केडिया जी मंत्री रामाश्रे सिंह के यहाँ पहुँचे। साथ में उपहार के रूप में बिस्कुट, चाकलेट मिठाई में सौ रुपयों का सामान लिया, फिर इनको उतारते हुए कहा—"कहीं यह न समझिये कि आपके लिये कुछ है, सब बच्चों के लिये है, हें हें हें हें।"

रामाश्रे सिंह ने उपहार को देखकर कहा..."हाँ, आपको तो बस बच्चों की पड़ी है। जैसे गाँधी जी के लिये अहिंसा और चर्खा, वैसे

आपके लिये बस शिशु मंगल हैं। कहिये क्या काम है?"

रामाश्रे सिंह भी घाघ थे, समझते थे कि केडिया बड़ा आसामी है। इससे काम बनेगा। वे यों ही मंत्री नहीं बने थे। भीतर भीतर वे कहीं हिन्दू महासभा से मिले थे, तो कहीं जमींदार सभा से। १६३० के पहले वे एक जमींदार के कारिन्दा थे। बाद को आन्दोलन में इस कारण पड़े कि जितना वसूल था, उतना जमा नहीं किया था। फिर तो जेल से लौटकर अपनी कूटबुद्धि से मंत्री बन गये थे। इन दिनों प्रधान मंत्री रामकृष्ण बाबू के विरुद्ध षड्यंत्र कर रहे थे कि वे स्वयं प्रधान मंत्री बनें। इस कारण वे बार बार कभी गांधी जी के पास, तो कभी पटेल के पास दौड़ा करते थे। वे बराबर कांग्रेस विरोधी पत्रों को रामकृष्ण बाबू के विरुद्ध मसाला दिया करते थे। एक बार कम्युनिस्ट पार्टी के एक पत्र को रामकृष्ण बाबू के एक पत्र की नकल भी दी थी।

दो सयानों में मुठभेड़ थी। रामाश्रे बाबू ने हँसकर केडिया जी का स्वागत किया और सिगरेट का डब्बा तथा पानदान बढ़ा दिया। केडिया जी ने नमस्ते करते हुए पान लिया, फिर कहा..."सिगरेट तो पीता नहीं, अलबत्ता हुक्का," कह कर उन्होंने मुह बनाया, और कहा..."देशी तरीका ठीक है न?"

सुनकर रामाश्रे सिंह हो हो करके हँस पड़े, बोले..."अमाँ, तुम भी केडिया अजीब लफंगे हो...।"

एक तो एकाएक तुम, फिर लफंगा! पर केडिया जी जरा भी नहीं झिझके। रामाश्रे सिंह बोले..."बुरा न मानना, मित्र, अब तो स्वराज्य हो गया, अब तो पीना चाहिये, पीना, अब काहे का परहेज...।"

केडिया जी ताड़ गये। बोले..."तो कहा क्यों नहीं? यहाँ एक से एक अंग्रेज दोस्त हैं। दो सौ साल की शराब पड़ी है।"

रामाश्रे सिंह बोले..."अमाँ, कहाँ, कहाँ? बताओगे भी कि तरसाते ही रहोगे?"

केडिया जी ने कहा..."अभी चलो..."

दोनों मोटर पर चले, और नेताजी बार में पहुँचे। पहले इसका नाम क्लर्क होटल था, पर स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ-साथ इसका नाम नेताजी बार हो गया था। रामाश्रे सिंह और केडिया दोनों प्राइवेट कमरे में ले जाये गये। फिर काकलेट उड़ने लगा। रामाश्रे ने पीकर कहा ..."भाई, सब तो ठीक है, पर इस स्थान के नाम में नेताजी का नाम क्यों घसीटा गया ?"

केडिया जी के मन में भी कभी यह सन्देह हुआ था। उन्होंने मैनेजर से पूछा था, तो उत्तर मिला था, वही बताया ..."अरे, तुम क्या समझते हो ऐसे ही नाम रखा गया। नेताजी भारत में नहीं पीते थे, पर देश के बाहर वे खूब पीते थे।"

रामाश्रे शिक्षा मंत्री था, अपने को अपटूडेट समझता था। उसने इस खबर की सत्यता पर सन्देह प्रकट किया। कहा ..."ऐसे तो लोग महात्मा जी को भी क्या क्या कहते हैं ? यहाँ तक उन्हें अपने यौन चरित्र के सम्बन्ध में अखबारों में सफाई देनी पड़ी।"

केडिया व्यवसायी था। समझा, बहस हो जायगी, काम रह जायगा, बोला..."सच झूठ ईश्वर जाने पर बार का मैनेजर बताता है। आई. एन. ए. से नुस्खा मिला है।"

"आई. एन. ए. की भली चलाई।" रामाश्रे ने कहा।

अपनी सत्यता प्रमाणित करने के लिये केडिया जी ने बाय को बुलाकर आई. एन. ए. काकटेल मँगाया।

पीने के बाद केडिया ने खाना मँगाया, कुछ मामूली सा। फिर बात छेड़ी..."भाई, वह जमीन दिलाओ... अब तो कारपोरेशन वाले जान नोच रहे हैं।"

नशा चढ़ चुका था। रामाश्रे सिंह ने खींझ कर कहा..."इतनी मजाल ! तुम सालों की, नोच कर बोटी बोटी खा जाओ।"

केडिया जी समझ गये कि नशा चढ़ गया। वे मंत्री जी को घूरने लगे, तब रामाश्रे ने कहा..."क्या डर रहे हो ? मैं आनरेबल मिनिस्टर

हूँ, मैं कह रहा हूँ, तुम उसको नोचकर इस तरह से चम्मच काँटे से खाओ।" कहकर चम्मच काँटे से थोड़ी सी हवा उठाकर खाई।

तब केडिया उठ खड़े हुए। यद्यपि काम नहीं, बना था, पर वे खुश थे। मछली जाल में अच्छी तरह आ गई थी, अब जाती कहाँ?

इसके बाद केडिया जी अनोखेलाल के यहाँ गये। वे अछूत मंत्री थे। बेचारा जानता था कि मंत्रित्व की योग्यता उसमें नहीं है। दूसरे मंत्रियों के हाँ में हाँ मिलाया करता था। पर पुराना हो गया था, दूसरों के सामने अकड़ता था।

केडिया जी ने जमीन की बात की, तो बोला..."आप जानते हैं, वह हरिजनों की जमीन है, मुझे इसमें न घसीटिये।"

तब केडिया जी ने सारी परिस्थिति समझा कर कहा .."मैं तो उन्हीं अछूतों में नहीं, हरिजनों को अपने यहाँ काम दूंगा, वे पहले से अच्छे हो जायेंगे।" इत्यादि।

पर अनोखेलाल अपनी टेक पर डटे रहे। केडिया जी यह भी समझ गये कि यदि मंत्रियों में अनोखेलाल ने विरोध किया, तो बंटाधार हो जायगा। इसलिये वे उपाय ढूंढ़ने लगे कि किस प्रकार अनोखेलाल को खुश किया जाय। दो दिन बाद वे फिर पहुँचे, और बोले..."आप हमारे कारपोरेशन में हरिजन स्वार्थ देखने के लिए डायरेक्टर हो जाइये...।"

"मेरे पास धन कहाँ, जो मैं डायरेक्टर बनूं?" अनोखेलाल ने टालते हुए कहा।

केडिया जी बोले .."महाशय हमारे कारपोरेशन में धन थोड़े ही देखा जाता है। देखी जाती है लियाकत। आप इस प्रान्त के सबसे प्रमुख हरिजन नेता हैं। हम आपको यों ही डायरेक्टर रखेंगे, पर कोई कुछ कहे नहीं, इस कारण हम यह दिखलायेंगे कि १०० रु० के दस शेयरों को खरीद कर आप हमारे डायरेक्टर हुए हैं। यो तो दस हजार से कम के शेयर में कोई भी डायरेक्टर नहीं हो सकता, पर एक उपनियम बनवा देंगे कि हरिजन शेयर होल्डरों के लिये यह रकम एक हजार होगी।

अनोखेलाल की बाछें खिल उठीं। सभी मन्त्री कहीं न कहीं किसी इंश्योरेन्स कम्पनी के मालिक, डायरेक्टर, हिस्सेदार थे, पर अनोखेलाल को कोई नहीं पूछता था। उसे बड़ी खुशी हुई।

इसी प्रकार मन्त्री पद्मकान्त बाबू भी तैयार कर लिये गये।

पर गाड़ी जा कर प्रधान मन्त्री रामकृष्ण बाबू तथा हरगोविन्द बाबू पर अटकी। और इस मामले में प्रधान मन्त्री के हाथ में ही काम था। केडिया जी ने बन्दोबस्त कर रामकृष्ण बाबू से भेंट की, तो उन्होंने साफ इनकार कर दिया। कहा..."मैं समझता हूं, लैंड एक्विजिशन ऐक्ट वहीं पर लागू किया जाना चाहिये, जहां सरकार को यह निश्चय हो कि जिस कार्य के लिए जमीन मांगी जा रही है, वह निश्चित रूप से सार्वजनिक हित की हो।"

केडिया जी ने प्रमाणित किया कि यह कारखाना राष्ट्र निर्माण का अंग होगा।

पर रामकृष्ण बाबू बोले .."दुःख है कि मैं इस पर सहमत नहीं हूँ।" कह कर एक पेन्सिल से अपने सिर पर टपटप मारते हुए कहा .. "अच्छा, एक बात, क्या आप सारा मुनाफा राष्ट्र को देंगे, या कोई मुनाफा न रक्खेंगे ? इस बात पर राजी हों, तो मैं इस योजना को उठा सकता हूँ। कहिये !" प्रधान मन्त्री के स्वर में चुनौती थी।

भला केडिया जी ऐसा कैसे कह सकते थे ? २०० फीसदी मुनाफे का स्वप्न, और कहां यह वादा। केडिया जी का चेहरा उतर गया, पर बनावटी मुस्कराहट चेहरे पर ला कर बोले..."भला मैं ऐसा कैसे कह सकता हूं ? मैं एक डायरेक्टर हूं, दूसरों की राय के बगैर मैं कैसे कुछ वायदा करूँ ?"

नतीजा यह हुआ कि केडिया जी को बड़ी निराशा मालूम हुई। पर वे भी पुराने खूसट थे, बोले..."जिस दिन बिड़ला, टाटा अपना सारा मुनाफा राष्ट्र को दे देंगे, उस दिन मुझे उम्मीद है हमारा कारपोरेशन भी सारा मुनाफा दे देगा।" अब की बार केडिया जी ने प्रधान मन्त्री राम-

कृष्ण बाबू को चुनौती की दृष्टि से देखा।

कहना न होगा कि रामकृष्ण बाबू ने इस चुनौती को स्वीकार नहीं किया, इसलिये कि वे समझते थे कि सारा मुनाफा दूर करना कांग्रेस की स्वीकृत नीति के अन्दर नहीं आता। रामकृष्ण बाबू समाजवाद से कोसों दूर थे, पर वे सब कांग्रेसी अधिकारियों की तरह, इनमें बड़े से बड़े आ जाते थे, मौके पर, विशेष कर विरोधी के सामने समाजवादी बन जाते थे, और सार्वजनिक व्याख्यानों में भी ऐसा ही कहते रहते थे।

कुछ भी हो, केडिया जी को खाली हाथ लौटना पड़ा। तब वे कुछ खिटपिटा गये। पर प्रत्येक निराशा उनके लिये नई आशा तथा उत्साह का कारण स्वरूप थी। उन्होंने इस विषय में कमला देवी को काम में लगाना चाहा। सब कुछ सिखा कर श्रीमती केडिया को कमला देवी के पास भेजा।

श्रीमती केडिया कमला देवी के पास पहुँचीं। वह खाली हाथ नहीं गई, बल्कि उनके लिये हीरे की एक जोड़ी कान की रिंग लेती गई। पाँच सौ से कम की नहीं थी। उपहार देकर श्रीमती केडिया चलने लगीं। कमला देवी ने कहा.. "क्यों क्यों. बहन, इतनी जल्दी क्या है ? बैठिये न।"

"नहीं, आज मौका नहीं है, फिर आऊँगी। सस्ते में यह रिंग मिली, समझ में आया कि आप पर खूब फबेगी, इस कारण आई, अब जाती हूँ।"

स्वभावतः कमला देवी ने दाम पूछा..."कितने में मिली ?"

"कुछ नहीं, बहन, बारह सौ लगे। हम व्यापारियों में एक दूसरे से मुनाफा करने का तरीका नहीं है, आप लेंगी तो पन्द्रह सौ से कम में न मिलेगी।"

"अरे, इतना दाम क्यों लगाया ?"...मुँह से कमला देवी ने कहा, पर मन-ही-मन बहुत खुश हुई। अभी तक हीरे की कोई चीज नहीं थी, अब एक चीज तो हुई।

"कुछ नहीं, बहन, हमारे यहाँ तो मुंडन और जनेऊ में इससे ज्यादा दाम की चीज दी जाती है। मैं तो डरते-डरते लाई कि यह चीज आपकी सादगी और शुद्धता के लायक है, नहीं तो कोई बढ़िया चीज लाती। पर अब मित्रता हो गई, अब तो कोई बात नहीं।"

कमला देवी ने कान में एरिंगों को पहन कर मुस्कराते हुए कहा... "पर मुझे यह सब पसन्द नहीं। हम तो आपको ऐसी कोई चीज नहीं दे सकतीं, हमारे वे तो बस एक साधु।"...

साधु शब्द को कमला देवी ने ऐसे उच्चारण किया कि उसका अर्थ बुद्धू है, यह साफ झलक गया।

श्रीमती केडिया को मौका मिल गया। बोलीं..."हमारे वे भी साधु हैं। बस एक झलक सवार होती है, तो फिर कुछ नहीं देखते। यही खिलौने वाला झक्क सवार हुआ, तब से न खाते हैं, न पीते हैं, बस उसी में दौड़ रहे हैं। मैंने सौ बार कहा कि जब सार्वजनिक कार्य है, और कोई समझता नहीं तो फिर क्यों यह घिस-घिस? हटाओ। पर वे कहीं इधर दौड़ रहे हैं, तो कहीं उधर। जब सरकार नहीं समझती, तो तुम अकेले कौन तीसमार खाँ हो, जो इस प्रकार दौड़ रहे हो। हम लोगों के भाँय-भाँय से होता ही क्या है?"

कमला देवी चौकन्नी हो गई। बोलीं..."क्यों क्यों, काम उनका अकेले का थोड़े ही है। सरकार क्यों नहीं मानेंगी? क्या वे कभी उनसे या किसी से मिले?"

श्रीमती केडिया अपने पति के प्रधान मंत्री तथा अन्य मंत्रियों से मुलाकात की बात बिल्कुल गोल कर गई। बोली..."नहीं तो, वे किसी से नहीं मिले, वे तो बस सभा करते फिरते हैं! कहते हैं जब बात सही है, तो क्यों सरकार न मानेगी?"

कमला देवी बोली..."नहीं, इस तरह काम न चलेगा, मैं उन्हें समझा दूँगी। वे मिलें तो सही..."

"कहूँगी, पर उनका मत ही और है। कहीं मिलने से इन्कार कर दें। बड़े झक्की हैं।"...श्रीमती केडिया बोलीं।

कहकर श्रीमती चली गई। हां, जाते समय श्रीमती केडिया कह गई..."मेरे आने की बात उनसे न कहियेगा, नहीं तो यह न समझें कि सिफारिश कराने आई। मुझे ऐसी बातों से बड़ा भय लगता है।"

"नहीं नहीं, मैं कोई बच्ची थोड़े ही हूँ।"

"हाँ, ठीक है, आपका जी चाहे कहें, नहीं तो मेरा क्या? मुझे तो इस व्यापार में नुकसान ही दिखाई दे रहा है।"

कमला देवी ने कहा..."आप निश्चिन्त रहें, मैं बहुत ढंग से कहूँगी, देखियेगा।"

जब रामकृष्ण बाबू घर आये, तो कमला देवी ने इधर उधर की बातों के बाद कहा...."तुम कांग्रेसी जापान के एजेन्ट कब से हो गये जी?"

रामकृष्ण बाबू जानते थे कि उनकी स्त्री कर्कशा है, पर जापान का एजेन्ट। तोबा तोबा! न मालूम कहाँ से यह फितूर घर कर गया। बोले..."जापान तो खुद ही मर रहा है उसका एजेन्ट हम कैसे हो गये?" फिर हम तो स्वतंत्र हो गये, हम तो किसी के एजेन्ट नहीं है।

कमला देवी ने कहा..."मालूम तो ऐसा ही हो रहा है।"

"क्यों? क्यों? किसी कम्युनिस्ट अखबार ने लिखा होगा, या किसी हिन्दी अखबार ने..."

रामकृष्ण बाबू को कम्युनिस्ट अखबारों की चिन्ता रहती थी। लोग कहते थे कि वे बहुत गैरजिम्मेदार बातें लिखते हैं। और हिन्दी पत्रों के सम्बन्ध में तो उन्हें पूरा डर था, क्योंकि उनकी यह धारणा थी, न मालूम यह धारणा कैसे हो गई थी, कि मिडिलची लोग हिन्दी पत्रों का सम्पादन करते हैं, रामकृष्ण बाबू आक्सफोर्ड में छात्र थे, अंग्रेजी फिल्म देखते थे। सैद्धान्तिक रूप से हिन्दी के भक्त होते हुए भी हिन्दी से सम्पूर्ण अपरिचित थे।

कमला देवी बोली..."हिन्दी पत्र क्यों, सभी कहेंगे। एक भला

आदमी देशी खिलौनों के लिये दौड़ रहा है, पर कोई उसका कुछ सुनता ही नहीं। यानी जापानी खिलौने आते रहें ?"

रामकृष्ण बाबू कौन्सिल असेम्बली के बड़े से बड़े विरोधी वक्ता से घबराते नहीं थे, पर कमला देवी के इस प्रश्न के सामने उन्हें कुछ न सूझा। बोले..."अभी सरकार ने इस विषय पर कोई राय नहीं दी है।"

कमला देवी ने कहा..."खैर, मेरा क्या ? आन्दोलन बढ़ रहा है। मेरा काम है बता देना।"

रामकृष्ण बाबू ने इस बात को अपने मन में नोट कर लिया, और जाकर केडिया जी की दरख्वास्त निकलवाई, और उस पर अंगरेजी नोट लिखा..."मंत्रिमण्डल के अगले अधिवेशन में पेश हो।"

करीब करीब आये दिन मंत्रिमण्डल का अधिवेशन हुआ करता था। अगले दिन देशी खिलौना कारपोरेशन की दरख्वास्त पेश हो गई, और मंजूर हो गई। यह हुक्म दिया गया कि वाजिब क्षतिपूर्ति के बाद जमीन दे दी जाय।

हुक्म के अनुसार जब इस बात के लिये जाँच और पैमाइश होने लगी कि किसको क्या क्षतिपूर्ति दी जाय, तब बस्ती वालों के कान खड़े हुए। ऐसा भयंकर कुहराम मचा कि अवर्णनीय था। यहाँ तक कि जाँच और पैमाइश का काम बन्द करना पड़ा। जनप्रिय मंत्रीमंडल था, वह जनता के विरुद्ध थोड़े ही जा सकता था।

अब केडिया जी बड़ी आफत में पड़ गये। उनका अब तक का सारा काम, दौड़ना घूमना व्यर्थता में पर्यवसित होता दीखाई पड़ा। हजारों की रकम के मिट्टी में मिल जाने का भय हुआ। केडिया जी मंत्रियों के पास दौड़े, तो उनमें से सभी ने कहा..."हम आपके लिए गोली थोड़े ही चलायेंगे।"

केडिया जी को सारा श्रम व्यर्थ होता हुआ ज्ञात हुआ। उनके माथे पर पसीना आ गया। दो दिन तक तो वे बिस्तरे से उठे नहीं, अन्न जल छोड़ सा दिया। तब श्रीमती केडिया ने उन्हें समझाया..."अरे, यह

क्या अपाहिजों की तरह पड़े हो, अगर काम बिगड़ गया, तो जाने दो। दूसरा काम करो। इस तरह रोने धोने से काम थोड़े ही बनेगा।"

पर केडिया जी सोच रहे थे। वे अपने दिमाग में एक योजना को परिपक्व कर रहे थे। अब वे स्वयं जाकर उस बस्ती के लोगों से मिलने लगे। उनको समझाया कि तुम पहले से अच्छे रहोगे, पर वे यह सब सुनने वाले नहीं थे। लोगों को पहले से नौकरी में लेना चाहा, पर यह भी व्यर्थ हुआ।

इस बस्ती की उस तरफ रहीमपुर नाम का एक गाँव था। यहाँ मुसलमान रहते थे। वे भी गरीब थे, बहुत गरीब। केडिया जी के एजेन्ट जाकर उन्हें समझाने लगे कि तुम लोगों को काम मिलेगा। वे तैयार हो गये, क्योंकि उनकी जमीन या मकान जाने का कोई प्रश्न नहीं था।

जब केडिया जी को यह खबर मिली कि रहीमपुर वाले उनकी योजना को पसन्द करते हैं, तो उनको एकाएक एक रोशनी सी मिल गई। वे इस रोशनी के अनुसार काम करने लगे। रुपये खर्च होने लगे, और लोग दौड़ने लगे।

एक हफते के अन्दर एकाएक इन बस्ती वालों में और रहीमपुर वालों में भयंकर दंगा छिड़ गया। यद्यपि राजधानी का मामला था, पर रात भर में ही दंगे ने इतना जोर पकड़ा कि उस बस्ती को जलाकर खाक कर दिया गया। रहीमपुर वालों का भी यही हाल हुआ। दोनों पक्ष के लोगों को केडिया जी के एजेन्टों ने पेट्रोल पहुँचाया था। स्थानीय थानेदार ने रात भर कुछ कार्रवाई नहीं की।

सबेरे देखा गया कि जहाँ वह बस्ती थी, वहाँ केवल राख तथा जलते हुए लट्ठे आदि हैं। बस्ती के चार सौ व्यक्तियों में पचास के करीब तो मारे जा चुके थे, पचास के करीब अस्पताल पहुँचाये गये थे, अग्निकांड इतना एकाएक हुआ था, तथा एक साथ चारों तरफ से आग लगाई गई थी कि बस्ती वाले अपनी कोई सम्पत्ती ही नहीं बचा पाये थे। यही हाल रहीमपुरवालों का हुआ था। कैसे क्या हुआ, यह कोई नहीं जानता था।

निरीह लोग यही बताते थे कि रात में देखा गया कि चारों तरफ आग लग गई है,'लोग जान लेकर भाग रहे हैं। इन दिनों पंजाब आदि स्थानों में दंगे हो रहे थे, सुनने वालों ने कहा कि इसी का प्रभाव है।

अगले दिन सब मन्त्री तथा भारतीय गवर्नर घटनास्थल पर पहुँचे। गिरफ्तारियाँ हुई, और हिन्दुओं की गिरफ्तारियां अधिक हुई। कांग्रेस को यह प्रमाणित करना था कि वह हिन्दू संस्था नहीं है, सो उसने गिरफ्तारियों की संख्या के द्वारा प्रमाणित कर दिया। गत बीस वर्षों से कांग्रेस इस बात को प्रमाणित करती आ रही थी। पाकिस्तान होने पर भी कांग्रेस ने इस प्रमाण के क्रम को जारी रखा।

दो मुसलमान मन्त्री भी घटनास्थल पर मौजूद थे। मामूली समयों में तो ये मन्त्री दूसरे मंत्रियों की हाँ में हाँ मिलाया करते थे, पर ऐसे मौकों पर ये लोग प्रधान मन्त्री को नकेल डाल कर चलाते थे। प्रधान मन्त्री रामकृष्ण बाबू भी मेमने की तरह चलते थे।

जिस गोल में मंत्रीगण आये थे, उसमें शहर के कुछ और लोग भी थे। केडिया जी भी थे। सब कुछ सुनने के बाद मंत्री अब्दुल कय्यूम ने कहा..."इधर के लोग बड़े सरकश मालूम होते हैं।"

रामकृष्ण बाबू बोले..."हाँ, ऐसा ही मालूम होता है।"

मंत्री रामाश्रे सिंह ने केडिया जी को चुपके से आँख मारते हुए कहा..."हाँ ज्यादातर क्रिमिनल टाइप के लोग हैं...।"

अब्दुल कय्यूम ने कहा..."हमारे सूबे पर धब्बा लगा दिया, इनको कड़ी से कड़ी सजा दी जाय।"

रामकृष्ण बाबू ने कहा..."जरूर।"

पुलिस के नये भारतीय आई जी. मिस्टर बात्रा भी वहीं थे। बोले..."हजूर, तीन सौ गिरफ्तारियाँ हो गयीं।"

किसी ने उनकी बातों पर ध्यान नहीं दिया। अनोखेलाल ने कहा... "हरिजनों का एक भी घर नहीं बचा। रहीमपुर में भी कुछ घर बचे हैं।"

अब्दुल कय्यूम ने बात बदल दी। इतने में रामाश्रे सिंह केडिया जी

की बगल में आकर डट गये, और धीरे से उनकी एक उंगली को दबाकर चुपके से बोले..."तुम, यार, हो बड़े खुशकिस्मत। अब तो बस चैन की बाँसुरी बजाओ।"

केडिया जी इसी बात से डर रहे थे। घबरा कर कुछ हटे। पर रामाश्रे छोड़ने वाला जीव नहीं था। उसने प्रधान मंत्री से कहा..."रामकृष्ण बाबू, देखिये यही केडिया जी जमीन माँग रहे थे, हरिजनों ने नहीं दिया, अब उनका खुद ही सर्वनाश हो गया।"

केडिया जी शर्म से गड़ गये। मिस्टर बात्रा ध्यान से उन्हें देख रहे थे। पर केडिया जी थे पुराने खिलाड़ी। उन्होंने संभल कर कहा..."भाई ऐसी जमीन भाड़ में जाय! इस दंगे से देश कितना पीछे चला गया। मैं तो ईश्वर से मनाता हूँ कि दंगे न हों, और चाहे कुछ हो।"...केडिया जी ने मुँह रुआँसा बना लिया।

मंत्री रामाश्रे ने धीरे से आँख मारी। अब्दुल क़य्यूम बोले..."अच्छा आप ही केडिया जी हैं। अब आप जरूर कारखाना बनावें। ऐसे सरकशों को इस शहर में जगह नहीं होनी चाहिये। आज दुनिया के सामने हमारी वजारत का सिर बालिश्त भर नीचा हो गया।"

केडिया जी ने कहा.. "अब तो इन जली ईंटों, पत्थरों, राख के ढेर को उठाने में ही कई सौ साफ हो जायेंगे।"

मंत्री रामाश्रे ने बीच में बोलते हुए कहा..."सो आप घबराते क्यों हैं, सरकार आपका ख्याल करेगी। क्यों, रामकृष्ण बाबू?"

रामकृष्ण ने सब के मुँह की तरफ देख कर कहा...'जरूर।"

उस दिन शाम को नेताजी बार में रामाश्रे सिंह और केडिया जी की खूब छनी। रामाश्रे सिंह दो-चार पेग पी कर गरमाते हुए बोले...."मगर, यार, तुमने खूब किया। तुम्हारा लोहा मान गये। आओ, हाथ मिलाओ!"

हाथ मिलाने को तो केडिया जी ने हाथ बढ़ा दिया, पर बोले... "समझा नहीं तुम क्या कह रहे हो?"

"सब समझ रहे हो, मेरे दिलवर ! तुम डार डार, मैं पात पात।"

अन्त में केडिया जी को हार माननी पड़ी। तब रामाश्रे ने एकाएक रुख बदलते हुए चिल्लाकर कहा..."तुम जानते हो, अभी तुम गिरफ्तार हो सकते हो। बस, बाबू को इशारा भर कर दूँ।"

केडिया ने दो हजार देकर पल्ला छुड़ाया, पर इससे उनकी मित्रता में फर्क नहीं आया। रामकृष्ण बाबू की सुख्याति तथा भलमनशाहत की आड़ में रामाश्रे खूब घूस खाने लगा। केडिया जी की भी बन आई, वह रुपया देता और काम बनाता।

रामकृष्ण बाबू को कुछ पता नहीं लगा। वे तो अपनी सैद्धांतिकता की आड़ में रहे, पर उनकी पीठ पीछे कई मंत्रियों का एक गुट बन गया। ये लोग खूब मनमाना रुपया पैदा करने लगे। काँग्रेस कभी आदर्शवाद का केन्द्र था, पर अब इन लोगों के नजदीक काँग्रेस केवल एक लूटने खाने का जरिया हो गया था।

रामकृष्ण बाबू अकेले क्या करते ? जब अधिकांश एम्. एल्. ए. दूसरी राय के थे, तो वे बस इतना ही करते कि खुद ईमानदार बने रहें। इसके लिये उन्हें बाहर भी कोई प्रशंसा नहीं मिली, न भीतर। कमला देवी उनसे कतई खुश नहीं थीं। कभी-कभी उनकी नाखुशी झगड़े के रूप में प्रकट होती। पति के निषेध पर भी वह कहीं बच्चों का जन्म दिवस, कहीं और किसी बहाने लोगों से बहुमूल्य उपहार, द्रव्य लेती रही।

खिलौना कारपोरेशन की इमारतें बन रही हैं। केन्द्र के एक महान् नेता उसका उद्घाटन करेंगे। रहीमपुर के अधिकांश मुसलमान पाकिस्तान चले गये, जहाँ वे पहले से खराब हैं। कई तो भिखमंगे हो गये, कई रास्ते के कष्ट से मर गये। उस बस्ती के कई हरिजन जेलों में सड़ रहे हैं। बाकी रहीमपुर में बस गये।

इस प्रकार देशी राज्य में देशी धंधा पनपा।

# नींव की ईंट

पूर्व के आकाश में अभी लालिमा दृष्टिगोचर नहीं होती थी, कि सरला उठकर घर के काम-काज करने लगती थी। छोटा-सा घर था, पर काम बहुत रहते थे, क्योंकि उसी को घर के सारे काम करने पड़ते थे। बर्तन माँजना, चौका लगाना, रसोई करना, झाड़ू-बुहारी करना, यहाँ तक कि पति के तथा अपने कपड़े भी धोना, यह सब सरला को ही करना पड़ता था। उसकी उम्र इस समय चौबीस से अधिक नहीं थी, पर कहीं-कहीं पर उसके चेहरे पर बुढ़ापे की छाप आ गयी थी। जिस समय वह हँसती थी, और ऐसा मौका बहुत कम आता था, तभी मालूम होता था कि वह चालीस साल की अधेड़ स्त्री नहीं, एक युवती है।

सरला कभी कुमारी भी थी, और छात्रा भी। उसने एंट्रेंस तक पढ़ा था। और आई० ए० में पढ़ रही थी, तभी वह दुर्घटना हुई, जिसने उसके जीवन क्रम को ही बदल डाला। जिस खेत में तरह-तरह के अनाज की मोहक हरियाली की सम्भावना दिखाई दे रही थी, उसको मानो एक लपट ने इस प्रकार झुलसा दिया, कि वह उजड़ा हुआ ऊसर ज्ञात होने लगा। जिस हालत में इस समय सरला थी, उससे यह कहीं अच्छा होता कि वह अपने पुरुष साथियों की तरह मर-खप जाती।

बड़ी उमंगों के साथ सरला ने राजनैतिक कार्य में हाथ लगाया था। उसकी एक सहेली के भाई, अरविन्द ने उसे एक क्रान्तिकारी दल की सदस्या बना लिया था। पता नहीं, वह कभी सदस्या बनी भी थी या नहीं क्योंकि उससे कभी किसी ने यह तो कहा नहीं, कि सरला आज से क्रान्तिकारी दल की सदस्या हुई। उससे लोग केवल काम लेते थे और

समय-समय पर राय भी लेते थे। बस, इतने ही से वह समझती थी, कि वह सदस्या थी। उन दिनों उसमें कितनी उमंगें थीं। पराधीन देश को स्वतंत्र करने के ऐतिहासिक कार्य में वह भी हिस्सा ले रही है, यह एक ऐसा विचार था, जिसने उसके सारे अस्तित्व को बिलकुल परिवर्तित कर, उसमें चार चाँद लगा दिये थे।

उसकी उस सहेली का नाम श्यामा था। उसने एक दिन सरला से चुपके चुपके यह कहा था . 'जानती हो, मेरा भाई क्रान्तिकारी है ?' उसने अजीब लहजे में कहा था।

उस समय सरला की उम्र चौदह साल की थी तो क्या, वह क्रान्तिकारियों के सम्बन्ध में काफी सुन चुकी थी। किसी ने शायद उसे खुदीराम तथा भगतसिंह के चित्र भी दिखलाये थे। दोनों चेहरों में कितना अन्तर था। एक को देख कर ऐसा ज्ञात होता था कि वह किसी तपोवन का भोला-भाला ऋषिकुमार है, जिसे फैशन से कोई सरोकार नहीं, यहाँ तक कि नाई से भी कोई मतलब नहीं। दूसरे को देखने से यह पता लगता था, कि वह बिलकुल आधुनिक है, अति आधुनिक। दोनों में कितना अन्तर था, फिर भी दोनों में कितनी समता थी। दोनों की आँखों में वही आग थी, वही लगन थी, वही तड़पन थी। यह समता इतनी बड़ी समता थी, कि दोनों के बाहरी प्रभेद दृष्टि में ही न आते थे। यह तो कहिये, कि सरला ड्राइंग की छात्रा थी, इस कारण उसने दोनों के बाहरी फर्क को ताड़ लिया था।

उसी दिन से सरला के मन में क्रांतिकारियों के सम्बन्ध में एक उत्कंठा, बल्कि यों कहिये कि उत्कंठा भरी श्रद्धा उत्पन्न हो गयी थी। वह उनके सम्बन्ध में और अधिक जानना चाहती थी। पर जिस लड़की के पास ये चित्र थे, उसने फिर उन्हें नहीं दिखाया। सरला ने बहुत अनुरोध किया, कि "मुझे दे दो; मैं इन चित्रों की नकल उतार लूँ।" पर उस नटखट लड़की ने उसे फिर उन चित्रों को नहीं दिखाया। निराश हो कर, सरला ने अपने मन से ही भगतसिंह तथा खुदीराम के चित्र खींचे। पर न

मालूम क्या बात हो गयी, कि उसे उन चित्रों से संतोष नहीं हुआ। तब उसने यह सोचा, कि उन चित्रों को फाड़ डाले? फाड़ने के लिये उसने हाथ भी बढ़ाये, कि एकाएक उसे यह बात याद आ गयी कि ये चित्र शहीदों के हैं। इन्हें वह कैसे फाड़ सकती है? उसने दाँत से जीभ काट ली। और उसे लगा, जैसे वह एक भारी पाप से बच गयी हो। फिर उसने उन चित्रों को माथे से लगाया, और एक कापी के अन्दर सुरक्षित रख दिये।

फिर वह उन चित्रों की बात बिल्कुल भूल गयी। पर इसके बाद जब दशहरा आया, और उसने देखा, कि लोग दुर्गा की मूर्ति को विसर्जन करने के लिये जा रहे हैं, तो उसे एकाएक उन चित्रों की बात स्मरण हो आयी। जब वह उसी समय संध्या के ऐन पहले, विसर्जन देखने के लिये गयी, तो भीड़ चीरती हुई अपनी दो अन्य सहेलियों के साथ पानी के पास पहुँची। और फिर उसने कुछ हिचकिचाते हुए, उन चित्रों को निकाल कर पानी में डुबाना चाहा, तो उसकी सहेलियों ने पूछा...."क्या है? क्या है? क्या डाल रही हो?"

सरला ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। उसने केवल उन कागजों की तरफ करुण नेत्रों से देखा, और शायद उसकी आँखों के कोनों पर दो बूँद आसू भी आ गये थे! ये खुदीराम तथा भगतसिंह कौन थे, और इन्होंने क्या कार्य किये थे, इसके सम्बन्ध में सरला को कुछ भी पता नहीं था। उसने बस इतना ही सुना था, कि ये क्रान्तिकारी थे, और कुछ नहीं। उसकी श्रद्धा का केवल यही कारण था। उसके वे आंसू मानों उसी श्रद्धा के तरल प्रतीक थे।

सहेलियों का कौतूहल उसकी चुप्पी से और बढ़ा। वे एक साथ पूछ बैठीं .."क्या है? क्या है?"

जब सरला ने देखा, कि इन लोगों से यों छुट्टी नहीं मिलने की, तो उसने कह दिया..."कुछ नहीं। कागज था। देखना चाहा, कि तैरता है या नहीं, इस लिये छोड़ दिया।"

पर इतने से सहेलियों का कौतूहल शान्त नहीं हुआ। उनमें से एक बोली...' नहीं नहीं, मैंने देखा था, कि उसमें कुछ लिखा हुआ था।"

दूसरी सहेली के लिये, जिसने कुछ भी नहीं देखा था, इतना इशारा काफी था। फिल्मों से पुष्ट हुई उसकी कल्पना बहुत दूर दौड़ गयी। बोली..."कोई प्रेम-पत्र होगा।" कह कर, वह हँसी।

सरला को वह हंसी बिलकुल अच्छी नहीं लगी। उसे ऐसा मालूम हुआ, जैसे उसकी किसी पवित्र वस्तु की हँसी उडाई गई हो। उसके तेवर चढ़ गये। बचकाने चेहरे पर एक रुद्र रूप आ गया। सहेलियाँ सहम गयीं।

इसके कुछ दिन बाद श्यामा ने उससे कहा, कि 'मेरा भाई क्रान्ति-कारी है।' बस उसी समय से उसने उसके भाई को अस्पष्ट रूप से चित्र में देखे हुए, खुदीराम और भगतसिंह के साथ एक श्रेणी में रख दिया। और उसी दिन से वह श्यामा के भाई से परिचित होने को उत्सुक रहने लगी।

श्यामा तो यह चाहती ही थी उसने बहुत जल्द ही एक दिन अपने भाई श्रीपति, से उसका परिचय करा दिया। श्रीपति के चेहरे के सम्बन्ध में सरला को कोई विशेष धारणा तो नहीं थी, पर वह अपने अन्तस्तल में यह समझती थी, कि उसका चेहरा खुदीराम या भगतसिंह के चेहरे की तरह ही होगा। पर वह तो दूसरी ही तरह का निकला यद्यपि इस समय श्रीपति की उम्र १८ से कम नहीं थी, और उसकी दाढ़ी का बढाव भी उम्र के लिहाज से काफी अच्छा था, फिर भी उसने कभी मुँह पर उस्तरा नहीं चलाया था। उसका कुरता भी ढीला ढाला और कुछ बेढंगा-सा था, और बटन के बजाय उस में बन्द लगे हुए थे। यद्यपि चेहरे की दृष्टि से वह न तो खुदीराम की श्रेणी में आता था, और न भगतसिंह की श्रेणी में, फिर भी सरला की कल्पना ने जल्दी ही उसे उनकी श्रेणी में कर दिया।

श्रीपति की बातों को वह बड़े ध्यान से सुनती, और बाद को भी उन पर मनन करती। श्रीपति उसे उस उम्र के नवयुवकों से बिलकुल भिन्न

ज्ञात हुआ। उस उम्र के नवयुवक की दृष्टि में कुछ और ही बातें होती हैं, पर श्रीपति की दृष्टि होम-शिखा की तरह पवित्र मालूम होती थी। दूसरे नवयुवकों के सामने उसे एक संकोच-सा ज्ञात होता था, पर श्रीपति के सामने वह अनुभव ही नहीं करती थी, कि वह किसी पुरुष के सामने हैं। फिर भी एक रहस्यमय तरीके से यह ज्ञात होता था, कि वह पुरुष सिंह है।

श्यामा ने परिचय कराते हुए कहा ..'यह मेरे भाई हैं, जिनका जिक्र मैंने तुमसे किया था।'

सरला ने, फौरन हाथ जोड़ते हुए कहा...'नमस्ते।'

श्रीपति ने कहा....'हम लोग नमस्ते नहीं करते, 'वन्देमातरम्' करते हैं। जैसे उसे एकाएक उस भयंकर शत्रु की याद आ गयी, जिसके विरुद्ध उसने जीवन की बाजी पर लगा दिया था, और उसके माथे पर बल आ गये। 'हाँ, दूसरों के सामने हम वन्देमातरम् नहीं, नमस्ते ही करते हैं।' कह कर, उसने चारों तरफ देख लिया, कि कहीं कोई है तो नहीं। फिर बोला....'यहाँ तो कोई नहीं है।' फिर हँसा।

इस प्रकार पहली ही बातचीत में उसने मानो सरला को उस रहस्य-लोक के लिये प्रवेश-पत्र दे दिया, जिसका लेखा उसके चेहरे पर सर्वत्र अंकित था। सरला ने उसे अपने मन में गुरु मान लिया। वह चाहती थी, कि कोई ऐसा ही व्यक्ति उसे आदेश देना शुरू कर दे, और वह उसे मानकर कृतकृत्य हो। उसकी आँखों में श्रीपति १८ साल का होते हुए भी युगों के ज्ञान से युक्त ज्ञात हुआ।

पहले ही दिन इन दोनों में एक आन्तरिक सम्बन्ध कायम हो गया। श्रीपति ने उससे कहा, मानों उसे मार्ग की कठिनता का ज्ञान हो चुका था..."हमारा मार्ग कठिन है। इस में किसी बात की आशा किये बिना, सिर पर कफन बाँधे चले चलना है। इसमें पुरस्कार बस मृत्यु है!..."

सरला ने अभी तर्क करना नहीं छोड़ा था, अधीनता यद्यपि मान ली थी। बोली..."पर सफलता भी तो हो सकती है?"

"हाँ, हो क्यों नहीं सकती ? पर हमें अपने मन में उसके मोह को आने नहीं देना है। जो ईंट नींव में काम आने जा रही है, वह हवेली की छत की बात न सोचे, तो अच्छा है, क्योंकि किसी भी हालत में वह उसे देखने नहीं जा रही है, और न उसे कोई देखने जा रहा है। हमें तो इसी नींव की ईंट को आदर्श बना कर चलना है। आगे जो होगा, सो तो होगा ही। हमें उस सम्बन्ध में चिन्ता करने की क्या आवश्यकता है ?"

श्यामा अब तक चुप थी। वह अपने भाई को प्यार करती थी, और उसके प्यार में यह बात भी मिश्रित थी, कि उसका भाई एक प्रिय किस्म का पागल है; पर वह उसे अपना गुरु मानने को तैयार नहीं थी। इसीलिये उसने अब तक की बातचीत में कोई हिस्सा नहीं लिया था। पर अब वह बोल उठी..."पर आँख बन्द करके चलने का भी तो कोई अर्थ नहीं होता ?"

श्रीपति ने जरा भी खिन्न न हो कर, कहा..."सोचना क्यों न चाहिये ? प्रत्येक व्यक्ति को सोचना चाहिये। पर नींव की इंट का सोचना तो उसी समय बन्द हो गया, जब वह कारीगर के हाथ में आ गई। उसके बाद फिर उसके लिये न सोचना है, और न कोई और बात है।"

उस दिन और बातचीत नहीं हुई। श्रीपति ने केवल इतना और कहा, कि वह कुछ पुस्तकें भेजेगा, जिन्हें सरला अवश्य पढ़े।

सरला ने पूछा..."क्या आपके पास खुदीराम या भगतसिंह के सम्बन्ध की कोई पुस्तक है ? मुझे उनके सम्बन्ध में जानने की बड़ी इच्छा है।"

श्रीपति जा रहा था। पर वह खड़ा हो गया। उसने एक बार आँखें उठाकर, सरला को देखा, और पता नहीं क्या समझा। बोला..."हाँ, हाँ, उनके सम्बन्ध में हमारे पास साहित्य है। पर अब हम उनसे कुछ आगे बढ़ चुके हैं।"

सरला के मन में इस बात से कुछ खुशी नहीं, बल्कि पीड़ा हुई। क्रान्तिकारी इतिहास का उसे जो कुछ ज्ञान था, उसमें उसके लिये यह

अकल्पनीय था, कि कोई व्यक्ति खुदीराम और भगतसिंह से आगे बढ़ सकता है। एक क्षण के लिये उसके मन में अपने नये गुरु में कुछ अविश्वास उत्पन्न हुआ। बोली..."उनसे भी आगे बढ़ गये?" फिर उसने मानों अपने मन के प्रमाणस्वरूप कहा .."पर उन्होंने तो प्राण दिये थे।"

"हाँ, प्राण अवश्य दिये थे। और इसके लिये वे हमेशा आने वाली पीढ़ियों के धन्यवाद के पात्र होंगे। पर विकास का नियम भी तो अटल है। वह भी तो काम करता रहता है। ये शहीद अपने पहले के लोगों से अधिक विकसित थे, पर उन्हीं के साथ विकास का नियम तो खतम नहीं हो गया। आज का क्रान्तिकारी विशेष कर जनता पर विश्वास करता है। वह वैयक्तिक हत्याओं पर अब विश्वास नहीं करता।"

"अहिंसा?" सरला ने शायद कुछ बहुत बारीक व्यंग से कहा।

"नहीं, अहिंसा नहीं। पर हम हिंसा के भी पुजारी नहीं हैं। जब जिस तरीके से काम निकलेगा, तब उसी तरीके से काम करने के लिये हम तैयार होंगे।"

श्यामा ने देखा, कि पहले दिन के लिये काफी बातचीत हो चुकी है। उसने, श्रीपति को मानों याद दिलाते हुए कहा..."भैया, तुम्हें वहाँ भी तो जाना है?"

भाई और बहिन में पता नहीं आँखों ही आँखों में क्या बातचीत हुई? श्रीपति वहाँ से चला गया। श्यामा देर तक चुप बैठी रही। बीच में उसने एक दफा पूछा..."देखा मेरे भैया को? कैसे पागल हैं!"

सरला बोली..."पर ऐसे ही पागल दुनिया को बदल देते हैं।" और उसने दूर क्षितिज की ओर देखा।

"यह तो, बस जब देखो तब, नींव की ईंट वाली उपमा देते रहते हैं। साबुन नहीं लगाते, तेल ऐसे ही कभी लगा लेते हैं, किसी प्रकार का कोई शौक नहीं करते। विवाह की बात कहो, तो मारने को दौड़ते हैं। सब लोग उन्हें सनकी समझते हैं।"

(२)

श्यामा ला-ला कर सरला को क्रांतिकारी पुस्तकें देने लगी। पहले तो भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास, अन्य देश की क्रांतियों तथा क्रांतिकारियों का इतिहास, फिर इस देशके अब तक के क्रांतिकारी आन्दोलन का इतिहास भी उसे दिया गया। वह उन पुस्तकों को बड़े चाव से पढ़ती। विशेष कर उन पुस्तकों को तो वह बहुत ही ध्यान से पढ़ती, जिन्हें ला कर देते समय श्यामा कह देती, कि "ये पुस्तकें जब्त हैं। इन्हें ध्यान से पढ़ना। इनके बारे में किसी को कुछ पता लगने न पाये।"

जब्त पुस्तकों का और ही मोह होता है। ब्रिटिश सरकार पुस्तकों को इस लिए जब्त करती थी, कि लोगों में उनका प्रचार न हो पाये, पर होता उल्टा ही था। जिस पुस्तक को सरकार जब्त कर लेती थी उसे लोग बढ़ कर पढ़ते थे। सौ तरीके से कोशिश करके, दुगुना तिगुना दाम दे कर, लोग उन्हें प्राप्त करते थे, जब सरला को कोई जब्त पुस्तक मिलती थी, तो वह उसे भूख-प्यास भूल कर पढ़ती थी। उसे बड़ी इच्छा होती थी, कि अपनी अन्य सहेलियों को इन पुस्तकों को दिखलाये, पर इस बात की सख्त मनाही थी, इस कारण वह मन मसोस कर रह जाती थी।

एक दिन श्रीपति आया, तो उसने पूछा..."क्यों, श्रीपति जी, मैं आपकी भेजी हुई पुस्तकों को अपनी सहेलियों को दिखला सकती हूँ?"

बात यह थी, कि श्यामा से उसने यह प्रश्न किया था, तो उसने बहुत कड़ाई के साथ इसका उत्तर ना में दिया था। वह जानती थी, कि इस सम्बन्ध में श्यामा की बात अन्तिम नहीं है, इस कारण उसने मौका पाते ही उससे भी यह प्रश्न किया।

श्रीपति ने कहा...'हम लोगों ने कोई पुस्तकालय नहीं खोला है। हम केवल उन्हीं को पुस्तक दे सकते हैं, जिनसे हमें कुछ उम्मीद हो।'

सरला ने इस पर सन्देह प्रकट किया, तो श्रीपति ने कहा...'हमें जिनसे यह आशा हो, कि वे बाद को चलकर क्रान्तिकारी कार्यों में सहायक हो सकेंगे, हम उन्हीं को पुस्तकें दे सकते हैं।'

सरला समझ गयी। और वह अपनी सहेलियों में पुस्तकें बाँटने भी लगी, पर उसी दृष्टि से।

एक दिन श्यामा बहुत घबराई हुई उसके पास आयी। बोली... 'लो, यह पोटली लो।' कहकर, उसने अपनी कुरती के अन्दर से एक छोटी-सी पोटली निकाली, और उसे सरला के हाथ में दे दिया। बोली... 'लो, इसे बहुत सँभाल कर रखना। घर पर किसी को मालूम न हो।'

'इसमें क्या है?' सरला ने धड़कते हृदय से पूछा।

श्यामा ने इस पर करीब-करीब डपटते हुए कहा...'तुम तो बस बेकार के प्रश्न किया करती हो। तुमसे कहा गया, कि 'इसे छिपाकर रख लो', और तुम तो लगी इधर-उधर की बातें करने। तुम जानती तो हो, कि हमारे मार्ग में बेकार का कौतूहल अच्छा नहीं होता।'

श्यामा ने जो अन्तिम शब्द कहे थे, वे उसके नहीं थे। उसको कभी श्रीपति ने इन्हीं शब्दों में डाँटा था। और आज उसने उन्हीं शब्दों का प्रयोग किया। उन शब्दों को सुनकर, सरला कुछ सिटपिटा गई। और कोई होती तो वह उसे डाँट देती; पर श्यामा समवयस्क होते हुए भी, दल के कार्य की दृष्टि से उसके ऊपर की गयी थी, इसलिए वह चुप रह गयी। उसने उस पोटली को ले जाकर छिपा दिया।

श्यामा ने कहा...'संभाल कर रखना। और जब मैं इसे वापस मांगू, तब देना।' कह कर, वह चली गयी।

रोज की तरह वह रुक कर इधर उधर की बातें किये बिना ही चली गयी। सरला ने भी कुछ नहीं कहा।

इसके बाद कई दिनों तक श्यामा नहीं आई। यों तो वह हर दूसरे रोज जरूर ही आती थी। यद्यपि श्यामा ने उसके प्रश्न का उत्तर देने से इन्कार किया था, फिर भी उसके मन में उस पोटली के सम्बन्ध में कौतूहल तो बना ही था, पर उसे चूँकि मना किया गया था, इसलिए वह मजबूर थी। जल्दी ही उसने पोटली को यों ही एक बिस्तरे के नीचे छिपा दिया था। श्यामा के चले जाने के बाद उसने उसे एक टूटे बक्स में रख

दिया। यही बक्स उसका निजी बक्स था। इसके अतिरिक्त, यही एक बक्स था, जिसके सम्बन्ध में उसे निश्चय था, कि उसे उसके भाई-भौजाई खोलेंगे नहीं। सरला के पिता-माता का देहान्त बहुत पहले ही हो गया था, इतने पहले कि उसे उनकी याद भी नहीं थी। वह तो केवल अपने बड़े भाई को ही जानती थी। बडे भाई की शादी भी कब हुई थी, यह भी उसे याद नहीं था। जब से उसने होश सँभाला था, तब से घर में उसके अलावा ये ही दो प्राणी थे।

भाई म्युनिसिपालिटी में किसी अच्छी नौकरी पर था। अच्छी नौकरी यों थी, कि सरला जिस मध्यम वर्ग की थी, उसकी दृष्टि से अच्छी ही थी, नहीं तो डेढ़ सौ रुपये कोई अधिक नहीं होते। केवल तीन ही प्राणी थे। कोई बच्चा नहीं था। सरला का भाई, रामधारी अपने को खुशहाल व्यक्तियों में समझता था। और लोग भी उसके सम्बन्ध में यही धारणा रखते थे।

टूटे हुए बक्स में उस पोटली को रख कर, सरला को पूरा इतमीनान नहीं हुआ। वह इतना अनुमान से समझती थी, कि इस पोटली में अवश्य कोई खतरनाक वस्तु है; पर क्या है, इस सम्बन्ध में वह किसी निश्चय पर नहीं पहुँच सकी। उसने सोचा कि शायद बम के गोले हों। यह सोच कर, उसके मन में कुछ भय उत्पन्न हुआ। बमों के सम्बन्ध में उसने यह सुन रखा था, कि उनके फटने से मकान तक उड़ जाते हैं। भय के साथ-साथ उसके मन में कौतूहल भी उत्पन्न हुआ। उसने अब तक जो क्रांतिकारी साहित्य पढ़ा था, उसमें कई जगह पर बमों का उल्लेख आया था। साधारण तौर पर उसने बम का गोला शब्द सुना था। इससे उसने यह अनुमान किया था, कि बम कोई गोलाकार वस्तु होती है।

पर सरला ने सोच कर देखा, कि जो पोटली उसे दी गयी, उसे ऊपर से जहाँ तक देखने से पता लगा, उसके अन्दर कोई गोला कार वस्तु नहीं मालूम पड़ती थी। उसके मन में कौतूहल उत्पन्न तो हो ही गया था, वह और बढ़ा। उसने सोचा, कि टूटे हुए बक्स में उस पोटली को रखना

खतरे से खाली नहीं है, क्योंकि यद्यपि उस टूटे हुए बक्स को यों तो कोई कभी नहीं खोलता; पर इसमें कुछ चिथड़े पड़े थे, इस कारण कभी-कभी भाभी उसे खोलती थी।" कहीं उन्होंने बक्स को खोला, तो इस पोटली को जरूर देख लेंगी। तब तो बिल्कुल अनर्थ ही हो जायगा।"

यों ही वह उससे नाराज रहा करती हैं। उसकी सहेलियों से कभी प्रेम से बोलतीं तक नहीं, चाय पिलाना तो दूर की बात है। अब यदि यह मालूम हो जाय, कि उसकी सहेलियों में कोई क्रांतिकारिणी भी है, तब तो आफत ही आ जाय। सोचते-सोचते उसने यह तय किया, कि जब कोई छिपाने की जगह ही नहीं है, तो वह श्यामा को यह पोटली लौटा देगी। इस बीच में वह कहीं नहीं जायगी। पर स्कूल तो जाना ही पड़ता था। वह दो-तीन दिन तक बीमारी का बहाना बना कर स्कूल नहीं गयी।

पर हमेशा इस तरह घर पर बैठे-बैठे बक्स की रखवाली करना तो सम्भव नहीं था। भैया ने उसके स्वास्थ्य के सम्बन्ध में विशेष फिक्र जाहिर की। उन्होंने डाक्टर को दिखाने की बात भी कही। इस लिये सरला के लिये कुछ न कुछ करना जरूरी हो गया। क्या वह उस पोटली को लेकर श्यामा के पास जाय, और उसे सारी परिस्थिति समझा कर, उसे लौटा दे? पर श्यामा यदि यह समझे, कि वह उसे डर कर लौटा रही है, तो कोई आश्चर्य की बात न होगी। और श्यामा यदि उसके सम्बन्ध में यह समझे, कि यह डरपोक है, और उसके चेहरे पर एक व्यंग भरी हँसी खेल जाय, इसे वह कभी सहन न कर सकेगी।

नहीं, वह पोटली को किसी प्रकार लौटायेगी नहीं। फिर उसे लौटा देने पर आगे न मालूम कौन कौन-सी बातें पैदा हों। श्यामा जो कुछ कहेगी, उसी पर श्रीपति का मत भी बनेगा। श्रीपति उसे कायर समझे, और उसके चेहरे पर वेदना प्रकट हो, इसे वह कभी सहन न कर सकेगी। ऐसा होना तो श्यामा के चेहरे पर व्यंग भरी हँसी प्रकट होने से भी बुरा होगा।

क्या कोई ऐसा उपाय नहीं निकल सकता, कि वह इस पोटली को

छिपा दे, और किसी को उसके बारे में कुछ भी मालूम न हो सके। ऐसी ही बातें सोचते-सोचते रात हो गयी। रामधारी के घर में रात का खाना जल्दी ही समाप्त हो जाता था, और उसके बाद सब लोग अपने-अपने कमरे में चले जाते थे, यही एक बात थी, जिसमें सरला अपने वर्ग की लड़कियों से कहीं अच्छी परिस्थिति में थी। उसका एक निजी कमरा था। ऐसा रामधारी की उदारता के कारण नहीं, बल्कि उस परिवार की विशेष परिस्थिति के कारण था। भाई-भौजाई एक कमरे में रहते थे, और उसे एक अन्य कमरे मे रहना तथा सोना पड़ता था। इस कमरे को वह जहाँ तक हो सकता था, साफ-सुथरा रखती थी। वह इसका निजी कमरा था।

जब अधिक रात हो गयी, और घर में सन्नाटा छा गया, तब वह चुपके से उठी, और उस बक्स के पास गयी। उसने धीरे से उस बक्स को खोल कर, उसमें से पोटली निकाल ली। बड़ी देर तक वह पोटली को बाहर से टोती रही, टोते-टोते वह भूल गयी, कि वह किस उद्देश्य से उठी थी। भीतर अजीब कड़ा-कड़ा मालूम होता था। पर वह वस्तु किसी प्रकार भी गोल नहीं कही जा सकती थी। अजीब चीज मालूम होती थी। एक तरफ तो वह मोटी मालूम होती थी, और दूसरी तरफ पतली उसने कई बार टो कर देखा, पर वह किसी निश्चय पर नहीं पहुँच सकी।

फिर एकाएक उसका कौतूहल अत्यधिक प्रबल हो उठा।

उसके दाँत जैसे एक दूसरे से लग गये। हाथ तन गये, और उसने पोटली को खोलना शुरू किया। खोलते-खोलते एक बार उसे श्यामा का निषेध स्मरण हो आया, फिर भी वह रुकी नहीं। पोटली मामूली रुमाल के से लत्ते में बँधी हुई थी। उसे खोलने में अधिक देर नहीं लगी।

दो मिनट के अन्दर उसके सामने पोटली के भीतर की चीजें रखी हुई थीं...एक तमंचा और कुछ कारतूस। तमंचे को तो उसने झट पहचान लिया, पर कारतूसों को वह अनुमान से पहचान सकी। इन चीजों को देख कर, उसके मन में एक अजीब खुशी हुई। उसने समझ लिया, कि

अब वह क्रांतिकारी दल के अंतरंग बल्कि हृदय स्थल में पहुँच गयी। वह सिहर उठी। पर साथ ही उसमें यह सन्देह उत्पन्न हुआ, कि क्या वह इस दल के लिये उपयुक्त है। उससे इस पोटली को खोलने की मनाही की गयी थी, पर उसने इसे खोल कर ही दम लिया। आत्म-ग्लानि की भावना उसके मन में उठी। उसने सोचा, कि उसने दल के साथ विश्वासघात किया है। उसने सोचा, कि यदि वह श्यामा से कह दे, कि उसने पोटली खोली थी, तो कैसा रहे?

पर श्यामा को वह जहाँ तक जानती थी, उसे दृष्टि में रखते हुए यह उचित नहीं लगा। श्यामा न मालूम क्या-क्या कह दे, और बात कहाँ की कहाँ पहुँच जाय। पोटली को लौटा देना जिस प्रकार गलत फहमी उत्पन्न कर सकता था, उसी प्रकार पोटली खोलने की सूचना देना भी उसके लिए खतरनाक हो सकती थी। नहीं, वह श्यामा से हर्गिज न कहेगी। पर अपना दोष स्वीकार तो करना ही चाहिये। यदि वह सीधे श्रीपति से अपने दोष की बात कहे, तो कैसा रहे? हाँ, श्रीपति उसे क्षमा कर देगा। क्रांतिकारी होते हुए भी, और वज्र से अधिक कठोर होते हुए भी, वह कुसुम से भी अधिक कोमल ज्ञात होता था। 'हाँ, श्रीपति जी बहुत अच्छे आदमी हैं।' यह सोच कर, उसका मन मधुर स्नेह रस से भर गया। कहाँ श्यामा, और कहाँ वे। नहीं, वह श्यामा से कभी न कहेगी। कहेगी, तो श्रीपति से ही कहेगी। हाँ, उससे अवश्य कहेगी। इस पर वे जो सजा देंगे, उसे वह सहर्ष मंजूर करेगी।

सामने तमंचा और कारतूस रख कर, वह इस प्रकार की बातें सोच रही थी। इतने में बाहर बन्द दरवाजे पर जैसे कुछ खटका सा हुआ। एक क्षण के लिये उसे जैसे काठ मार गया। तो क्या दरवाजे की सौंध से कोई उसको देख रहा है? क्या भैया हैं? नहीं। पास के कमरे से उनके खर्राटे की नियमित आवाज आ रही है। तो क्या भौजाई? हाँ, वह हो सकती हैं। उनमें ऐसी आदत है।

वह किंकर्तव्यविमूढ़-सी हो गयी। कुछ क्षण तक तो वह कुछ सोच

ही नहीं सकी, कि क्या करे। फिर उसने उठ कर, बत्ती के स्विच को बन्द कर दिया। कमरे में अंधेरा हो गया। कई मिनट तक खड़े-खड़े, वह सुनती रही। फिर वह दरवाजे के पास गयी, और वहाँ खड़ी सुनती रही। पर कोई आवाज सुनाई नहीं पड़ी। 'यदि भौजाई ने देख लिया हो, तो? वह सवेरे जरूर भाई से कहेंगी, और फिर बड़ा भारी अनर्थ हो जायगा।' रामधारी उन व्यक्तियों में थे, जो दूर से क्रांतिकारियों की कभी-कभी प्रशंसा भी कर देते थे, पर उनसे एक योजन दूर पर रहना चाहते थे। उन्हें सबसे अधिक अपनी नौकरी प्यारी थी। यद्यपि वे सरकारी नौकर नहीं थे, फिर भी यह किसी से छिपा नहीं था, कि स्थानीय म्युनिसिपलिटी के लोग जिला कलक्टर के हाथों के कठपुतले थे, और उनको हर तरीके से खुश करना अपना फर्ज समझते थे।

'भैया बहुत बिगड़ेंगे। शायद जल्दी ही शादी कर दें।' बहुत दिनों से भौजाई न मालूम क्यों उसकी शादी कर देने की रट लगाये हुए थीं। पर भाई साहब यह कह कर टाल रहे थे, कि 'शादी के लिये भी तो पढ़ना जरूरी है। आजकल अनपढ़ लड़कियों को कौन पूछता है?' पर अब यह बात मालूम हो जाने के बाद शादी न टल सकेगी। अब तक सरला के मन में दूसरी तरह की परेशानी थी। अब यह दूसरी परेशानी खड़ी हो गई। दोनों परेशानियाँ मिल कर, एक अजीब बेचैनी में परिणत हो गयीं। उसे किसी तरह भैया के क्रोध से बचना ही होगा। नहीं, वह शादी नहीं करेगी। उसे यह एक दुर्भाग्य-सी ज्ञात होती थी। वह कुमारी रह कर, अन्त तक देश की सेवा करेगी। यदि श्रीपति और दूसरे पुरुष देश सेवा कर सकते हैं, तो वह क्यों नहीं कर सकती?

फिर भी जहाँ तक हो सके, उस परिस्थिति को आने ही क्यों दिया जाय? यदि भौजाई शिकायत भी करे, तो भी वह साफ़ इनकार कर जायगी। पर कहीं तलाशी ली गयी, तो? ऐसा उपाय करना चाहिए, कि तलाशी लेने पर भी कुछ न निकले। उसने कई जगहें सोचीं, जहाँ तमंचा छिपाया जा सकता था। पर कोई भी जगह ऐसी नहीं थी, जहाँ भौजाई

की पहुँच न हो। पुलिस की तलाशी से भले ही बचा जा सके, पर भौजाई की तलाशी से तो नहीं बचा जा सकता।

पर कुछ करना तो जरूरी ही था। रात भर ऐसे सोचते रहने से क्या होगा ? उसने खट से बत्ती जलायी, और फिर पोटली जैसे बँधी हुई थी, उसे ठीक उसी तरह से बांधा। श्यामा से बचना भी तो जरूरी था। कहीं पोटली दी गयी, और उसने शक किया, कि वह खोली गयी थी, तब तो अजीब परिस्थिति उत्पन्न हो जायगी। न तो स्वीकार करते बनेगा, और न इनकार करते ही। झूठ बोलने को तो वह सौ झूठ बोल सकती थी। भौजाई से तो उसे झूठ बोलना ही पड़ता था। पर एक क्रान्तिकारिणी साथिन से झूठ बोलना उसका विवेक गवारा नहीं करेगा।

बिजली की रोशनी में उसने जो फिर से अपने कमरे को देखा, तो उसके बीच में एक तमंचे तथा कुछ गोलियों को पड़ा देख कर उसे ऐसा ज्ञात हुआ, जैसे पुराने जीवन से सम्बन्ध विच्छेद करके उसने एक नये जीवन में पदार्पण किया हो। उसे यह स्पष्ट प्रतीत हुआ, कि आगामी जीवन खतरों से भरा है; पर उस मध्य रात्रि में अपने कमरे में खड़े-खड़े उसे इसके कारण कुछ भय नहीं उत्पन्न हुआ। उसने दो सौ मील की रफ़्तार से सोचना शुरू किया। वह ऐसी कोई बात सोचना चाहती थी, जिससे कि हर तरह से वह बच सके।

उसने क्षिप्रहस्त से सूई, डोरा और कैंची निकाली। फिर उसने अपने तकिया को उधेड़ कर, उसके अन्दर उस पोटली को सी दिया। और फिर वह बड़ी शान्ति से सो गयी। उस समय उसे ऐसा प्रतीत हुआ, कि अब स्वयं ब्रह्मा को भी कुछ पता नहीं लगेगा।

३

श्यामा ने दो तीन दिन बाद पोटली माँगी, तो सरला दरवाजा बन्द करके, उसी के सामने तकिये से निकाल कर, पोटली दे दी। श्यामा ने खुश हो कर कहा, "तुम तो, बहिन, बड़ी चालाक निकली।"

सरला ने प्रसन्न हो कर कहा, "चालाक कुछ खुशी से थोड़े ही बनी

मैं। परिस्थितियों ने चालाक बना दिया। देखो न।" फिर उसने अपने कमरे की तरफ श्यामा की दृष्टि आकर्षित करते हुए, कहा, "यहाँ मेरे पास कोई छिपाने की जगह नहीं है। इसी लिए ऐसा करना पड़ा। एक बक्स है, सो, देखो न, टूटा है।"

श्यामा ने उस पोटली को अच्छी तरह छिपाते हुए कहा, 'तो तुमने मुझसे पहले क्यों नहीं कहा ? कहीं और रखवा देती।' वह जल्दी में थी, चली गया।

इसके दूसरे या तीसरे दिन रामधारी बाबू, घबराये हुए, दफ्तर से आये। बोले...'आज दिन दहाड़े किसी ने गोरे सुपरिन्टेन्डेन्ट पर गोलियाँ चलाईं। वे बाल-बाल बच गये। सारे शहर में तहलका मचा हुआ है। चारों तरफ तलाशियाँ हो रही हैं।' रामधारी बाबू के कहने से यह पता नहीं लगा, कि उनकी सहानुभूति किस ओर थी। पर वे बहुत घबराये थे, इसमें कोई शक नहीं था।

सरला ने इस खबर को बड़े अजीब तरीके से सुना। उसने इस पर कुछ भी नहीं कहा, कुछ टीका तक नहीं की। वह केवल यही सोचती रही, कि शायद उसी के तमंचे से वार किया गया होगा। उसी के, हाँ, उसी के। यद्यपि वह तमंचा मुश्किल से सात दिन उसके पास रहा, पर वह उसे अपनी चीज समझे बगैर नहीं रह सकती थी। उसके प्रति एक अपनत्व इस बीच उसके मन में पैदा हो गया था। पर वार खाली गया, इसका उसे अफसोस हुआ। क्यों, वार खाली क्यों ? खुदीराम से ले कर कितने ही क्रान्तिकारियों के वार खाली गये। क्यों, ऐसा क्यों होता है ?

भाई ने जो खबर सुनाई, उससे यह पता नहीं लगा, कि वार करने वाला गिरफ्तार हुआ या नहीं। पर वह पूछने से डरती थी। भाभी ने कई प्रश्न किये, पर उसने कोई प्रश्न नहीं किया। लेकिन उसने मन में मान लिया, कि जब भाई ने नहीं बताया, तो अवश्य वार करने वाला बच निकला

होगा। तभी तो तलाशी आदि हो रही थी। यह सोचकर उसे कुछ शांति मिली। एकाएक उसके मन में एक बात आयी। तो क्या श्रीपति ने वार किया था ? सोच कर वह सन्न से रह गयी। इस बात को तो उसने सोचा ही नहीं था। गहराई से सोचकर उसने देखा, कि जो कुछ हुआ, सो बिलकुल स्वाभाविक था। केवल जबानी जमाखर्च से क्रान्ति थोड़े ही होगी ? अब कार्य करने का युग शुरू हो गया है।

उसे बड़ी इच्छा हो रही थी, कि वह श्यामा के घर जाय, और सब बातें पूछे, पर डर रही थी, कि कहीं भाई साहब बिगड़ न जाय। रोज भाई साहब दफ्तर से आकर, जलपान करने के बाद कहीं बाहर निकल जाते थे, पर आज वे बिलकुल नहीं निकले। मालूम होता था, कि तलाशियों के डर से घर से नहीं निकल रहे थे। फिर सरला कैसे निकलती ? वह चुपचाप बैठी रही।

इतने में श्यामा आई। रामधारी सामने ही बैठे थे। उन्होंने उसको सन्देह की दृष्टि से देखा। श्यामा ने अपनी जान में बहुत छिपाया; पर यह स्पष्ट था, कि वह बहुत जोश में तथा शायद जल्दी में थी। वह रामधारी को नमस्ते करके, कृत्रिम हँसी हँसती हुई, सरला के कमरे में घुस गयी। चारों तरफ देखकर, उसने सरला को फिर वही पोटली दे दी। फिर धीरे से बोली...'इसे छिपा कर रख लेना !'

इस पर सरला ने उसके चेहरे की तरफ असहाय दृष्टि से देखा। श्यामा समझ गयी, कि उसकी दृष्टि क्या कह रही है। बोली...'बस रात भर के लिए रख लो। कल कहीं और रखने की व्यवस्था कर लूंगी। तुम्हारा ही घर करीब पड़ता है, इसीलिए कष्ट देना पड़ा।' कह कर उसने पास पड़ी एक कोर्स की किताब उठा ली, और फिर कृत्रिम हँसी हँसती हुई बाहर निकल गयी।

सरला बड़ी मुश्किल में पड़ गयी। पर उसने किसी तरह पोटली को छिपा लिया। बाहर निकली, तो रामधारी ने पूछा...'श्यामा क्यों आयी थी ?'

"कुछ नहीं, एक कोर्स की किताब लेने।" सरला ने तड़ाक से उत्तर दिया।

अगले दिन श्यामा आयी, पर उस पोटली को लेने के लिये नहीं। बोली..."तुम्हारे पास तो अलग कमरा है। भैया को दो तीन दिन तक रात में छिपा लिया करो, तो बड़ा उपकार हो।।"

सरला को यह बात इतनी अप्रत्यशित तथा आश्चर्य जनक लगी, कि उसके मुँह से एक अस्फुट ध्वनि मात्र निकली।

श्यामा ने कहा..."अच्छा, तुम्हें नहीं मालूम ? कल हमारे घर में तलाशी हुई थी। शायद भैया के नाम वारंट है। पर वे फरार हैं। दिन का आश्रय तो मिल गया है। रात में तुम्हारे यहाँ रहेंगे।"

सरला ने मृदु प्रतिवाद करते हुए कहा..."भैया देख लें, तो ?"

श्यामा इस प्रश्न से बिलकुल परेशान न होकर, बोली..."भैया कौन रामधागी जो ? वे कैसे देखेंगे ?" फिर उसने, जंगले से सड़क की ओर झाँकते हुए, कहा..."वे रात को इधर से आ जाया करेंगे। एक सिगनल होगा, जिससे तुम एक रस्सी लटका दोगी, और वे चढ़ कर ऊपर आ जायंगे। फिर रात के खतम होने के पहले ही वे चल देंगे। बस, दो तीन दिन तुम्हारे यहाँ रहेंगे।

सरला ने अबकी बार जोर से प्रतिवाद करते हुए कहा, मानो वह अपने जीवन के लिए लड़ रही हो..."पर मैं कहाँ जाऊँगी ? वे तो यहाँ रहेंगे, और मैं ?"

श्यामा ने कुछ खिन्न होकर, कहा..."क्यों, यह कौन बड़ा सवाल है। तुम भी यहीं रहोगी। भाई बहिन एक साथ एक कमरे में रहें, तो कोई हर्ज है क्या ?"

बात सरला के समझ में आ गयी, पर फिर भी वह पूर्ण रूप से संतुष्ट न हो सकी। कोई बात खटक रही थी। बोली..."पर कहीं किसी ने देख लिया, तो अनर्थ हो जायगा। भैया तो मुझे फौरन निकाल बाहर करेंगे।

श्यामा झुँझला गयी। फिर बोली..."तुम्हें तो बस अपनी ही पड़ी

है। तुम तो निकाली जाने से डर रही हो। और वहाँ भैया के सिर पर फाँसी का फँदा झूल रहा है।''

सरला को राजी होना पड़ा। रस्सी, सिगनल आदि सब बातें तय हो गयी। श्यामा चली गयी, तो सरला रात की बात सोचने लगी। उसके मन में भय था, अत्यधिक भय, कि कहीं भाई भौजाई या अन्य कोई देख न ले। पर साथ ही, न मालूम क्यों, उसके एक हृदय के कोने में हर्ष की भावना भी थी। श्रीपति, उसका आदर्श श्रीपति, आज उसीके कमरे में रात को सोयेगा। वह उसके लिये विपत्ति का सामना करने जा रही है। उसे अपनी खाट पर सुला कर, खुद जमीन पर सोने जा रही है। शायद कुछ बातचीत भी हो। इन विचारों से उसका मन प्रतीक्षा से थिरकने लगा। उसने भौजाई की आँख बचा कर कमरे को खूब साफ़ किया। इसके अतिरिक्त उसने तय किया, कि आज से वह कमरे के दरवाजे की सांधो को लत्तों से बन्द कर देगी।

यथा समय श्रीपति आया, और उसने सिगनल दिया। सरला का हृदय थरथर काँप रहा था। पर दो मिनट के अन्दर श्रीपति उसके कमरे में था। वह रबर जूते पहने हुए था, जिससे कि आवाज न हो। उसने आ कर, इशारे से पूछा, कि सोने की व्यवस्था कहाँ है। सरला ने उसे अपनी खाट दिखा दी। श्रीपति ने खाट देख कर, फिर पहले की तरह इशारे से न पूछ कर, सरला के पास आ कर, बहुत धीरे से पूछा..."और आप ?...आप कहाँ सोयेंगी ?"

सरला ने, हाथ से कमरे के दूसरे किनारे पर एक कम्बल दिखाते हुए, कहा ..."मैं उस पर सो जाऊँगी।"

श्रीपति शायद कुछ हँसा, जा कर कम्बल पर लेट गया, और आंखें बन्द कर लीं। खट से स्वीच बन्द हुआ, और कमरे में अंधकार हो गया। थोड़ी देर लेट कर, श्रीपति ने यह अनुभव किया, कि सरला अभी लेटी नहीं है। उसने जेब से निकाल कर, टार्च जलाया, देखा, कि सरला खाट के पास नीचे बैठी हुई है। वह परिस्थिति समझ गया, और उठ कर

सरला के पास जा कर, चुपके से बोला..."आप सोती क्यों नहीं ?"

सरला ने कुछ ऐसी बात कही, कि श्रीपति जमीन पर सोये और वह खाट पर सोये, यह कैसे हो सकता है।

इस पर पता नहीं श्रीपति हँसा या नहीं, पर धीरे से बोला ..."ओह, यह बात ? अभी आप में पुरानी धारणायें मौजूद हैं ?" कह कर, वह चुपचाप खाट पर जा कर लेट गया।

सरला जा कर उस कम्बल पर लेट गयी। आज उसे कम्बल पर लेटने में जो आनन्द मिला, वह खाट पर लेटने में भी कभी नहीं मिला था। यथा समय उषा काल के पहले ही श्रीपति ने सरला को धीरे से जगाया, और कमरे से बाहर निकल गया। जिस प्रकार वह अन्दर आया था, उसी प्रकार वह बाहर चला गया।

अभी रात कुछ बाकी थी। सरला जा कर, खाट पर लेट गयी, और थोड़ी ही देर में सो गयी। उसे एक मधुर स्वप्न दिखाई दिया। बहुत ही मधुर। उसने देखा, मानो जमीन पर लेटने से उसे ज्वर हो गया है, और श्रीपति उद्‌विग्न हो कर उसके सिरहाने खड़ा है। उसके आँखों में परेशानी है, माथे पर बल है। उन आँखों में परेशानी तथा उस माथे पर बल हैं, जिनमें शायद फाँसी के तख्ते पर भी कोई परेशानी या बल न आये। स्वस्थ रहने से यह बुखार कहीं अच्छा है। फिर उसने देखा, कि थोड़ी देर बाद श्रीपति उसके माथे पर हाथ रख कर, ज्वर देख रहा है। अद्‌भुत स्पर्श था। सारे शरीर में बीजली सी दौड़ी जाती थी। वह मानो किसी उच्च लोक में पहुँच रही थी। श्रीपति ने कई बार उसके सिर पर हाथ फेरा।

इतने में बाहर से भौजाई ने शायद आवाज दी। वह हड़बड़ा कर उठ बैठी।

स्वप्न भंग हो गया। उसे भौजाई पर बड़ा क्रोध मालूम हुआ। पर उसे एकाएक यह स्मरण हो आया, कि रात को फिर श्रीपति आयेगा। यह सोच कर, वह प्रफुल्ल हो कर, उठ खड़ी हुई।

दिन भर वह उसी नशे में रही कि श्रीपति के जरिये वह भारतीय क्रांति की सेवा कर रही है। अब उसके मन में पहले दिन की तरह न भय था, न लज्जा थी, न शंका थी। उसे आज इस बात का कतई भय नहीं मालूम हो रहा था, कि उसकी उम्र सोलह वर्ष है, और श्रीपति की बीस, वह नवयुवती है, और श्रीपति नवयुवक, और लोग रात में यदि उन्हें एक साथ देख लेंगे, तो क्या कहेंगे? उसे अब ऐसा मालूम हो रहा था, कि कोई कुछ कह ही नहीं सकता। श्रीपति क्रान्ति का अग्रदूत है। किसकी मजाल है कि उस पर सन्देह करे। वह मामूली मानव की श्रेणी में होता, तो उस पर सन्देह किया भी जाता। वह तो नर नहीं, देवता है, और उसी श्रेणी का व्यक्ति है, जिसमें खुदीराम, भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद और कितने ही अन्य शहीद थे। उसी प्रकार के विचारों के साथ साथ उसे पोटली की याद आयी। उसने उसे दीवार की एक कमजोर ईंट हटा कर, उसके अन्दर रख दिया। अब वह बिल्कुल सुरक्षित थी।

भौजाई अब उसे कभी नहीं पा सकती। हा हा हा! उसे यह बात पहले क्यों न सूझी? बहुत अच्छा हुआ, कि यह छिपाने की जगह निकल आयी। चिन्ता दूर हुई। अब श्यामा इसे ले जाय, तो अच्छी बात है; न ले जाय, तो भी कोई बात नहीं। सोचते-सोचते उसे याद आया, कि उसने दल के आदेश के विरुद्ध पोटली को खोल कर देखा था। खुशी आत्मग्लानि में परिणत हो गयी। उसका हृदय धक् हो गया। लोग तो क्रान्ति के लिये सब सुख छोड़ कर, फाँसी के तख्ते की ओर जा रहे थे, और उससे साधारण कौतूहल का दमन भी नहीं हो सका। बड़ी भद्दी बात है।

यथा समय श्रीपति फिर आया। आज वह सीधे खाट पर पहुँच गया। बाकायदा दरवाजे की साँधें कलकी तरह लत्ते से बन्द की हुई थी। श्रीपति लेट गया। फिर भी सरला खटिया के पास खड़ी रही। श्रीपति ने आँखें बन्द कर लीं। फिर भी न तो लाईट बुझाई गयी, और

न सरला वहाँ से हटी। दो मिनट तक प्रतीक्षा करने के बाद, श्रीपति आँखें खोल कर प्रश्नसूचक दृष्टि से सरला की तरफ देखने लगा।

सरला ने गिड़गिड़ाते हुए कहा..."श्रीपति जी, मुझ से एक अपराध हो गया।"

'क्या ?' कह कर, श्रीपति उठ बैठा। उसके चेहरे पर परेशानी की झलक आ गयी। शायद वह अनुमान कह रहा था, कि अपराध किस क़िस्म का है ? क्या पुलिस को कुछ पता लग गया, या और कोई अनर्थ हुआ ?

गिड़गिड़ाती हुई सरला ने फिर कहा ..."मैंने एक ऐसा अपराध कर, डाला है, जो मुझे नहीं करना चाहिये था।

"क्या ?" अधिकुतर उद्विग्नता से श्रीपति ने पूछा, और उसके माथे पर के बल और घनिष्ठ हो गये।

सरला ने कहा..."मैंने हुक्म उदूली की है !"

'क्या ?" श्रीपति ने पूछा ?

"मुझसे पोटली खोल कर देखने के लिये मना किया गया था, पर मैंने उसे खोल कर देखा है। मैं अपराधिनी हूँ !"

"ओह, यह बात !" श्रीपति ने आश्वस्त हो कर कहा ! फिर वह लेट गया। बोला ..."आपने अच्छा नहीं किया !" और रूखी दृष्टि से उसने सरला की ओर देखा। वह निर्भय पक्षपातहीन, दृष्टि, जिसमें शायद न किसी के प्रति स्नेह था, न विद्वेष, एक क्रान्तिकारी की संयत, दृढ़ संकल्प दृष्टि।

एक क्षण के लिये सरला को ऐसा ज्ञात हुआ, जैसे सारी पृथ्वी उसके पैरों के नीचे से सिर के ऊपर आ गयी, और घूमने लगी। यह व्यक्ति श्रीपति इतना निर्मम है। उसने बढ़कर श्रीपति के पैर पकड़ लिये। बोली "मुझे क्षमा कीजिये।"

सरला का यह कृत्य बिलकुल अप्रत्याशित था। श्रीपति को इसकी जरा भी आशा नहीं थी। वह हड़बड़ा कर उठ बैठा, और एक मृदु झटके

से अपने पैर को छुड़ा लिया। बोला..."यह आप क्या कर रही हैं?" फिर उसने पहले की तरह रुखाई के साथ कहा..."आप ने अपराध किया। है, इसमें सन्देह नहीं। पर आप इसके लिये मेरे पैर क्यों पकड़ती हैं? हम लोग सभी दुर्बलचित्त हैं। हमें एक दूसरे के पैर पकड़ने की कोई आवश्यकता नहीं। क्या पता, कि मैं ही आपसे अधिक अपराधी साबित होऊँ? इस लिये हमें एक दूसरे से क्षमा माँगने की कोई आवश्यकता नहीं। हमें बस आगे से सावधान रहना चाहिये।"

"आप अपराधी?" सरला को जैसे विश्वास नहीं हुआ। बोली... "आप तो क्रान्ति के अग्रदूत हैं! आप कैसे अपराधी हो सकते हैं?"

श्रीपति ने, फिर बैठते हुए, कहा..."एक पुरानी कहावत है, कि जब तक किसी का अन्त न देख लो, तब तक कुछ मत कहो। कितने ही बड़े क्रान्तिकारी बाद में कमजोर साबित होते हैं। अभी मैं पकड़ा जाऊँ, तो पता नहीं कि मुखबिर हो जाऊँ, या क्या करू?"

"नहीं, ऐसा नहीं हो सकता?"

"क्यों नहीं हो सकता? पुराने क्रान्तिकारियों का इतिहास देखो। जो फाँसी पर चढ़ गये, या गोली खा कर मर गये, वे तो हैं; पर उसके साथ-साथ बहुत से ऐसे भी तो हैं जो मुखबिर हो गये।"

सरला ने इस पर कुछ कहना चाहा, पर श्रीपति ने एक आज्ञामूलक इशारे से उसे मना कर दिया।

सरला स्वीच बुझा कर, अपने कम्बल पर जा कर लेट गयी। उसने जो श्रीपति के पैर छुये थे, वह स्पर्श अभी तक उसके हाथों में एक अत्यन्त पवित्र साथ ही सुख कर लेप की तरह लगा हुआ था। अनायास ही उसके हाथ उसके सिर पर चले गये। अपने अपराध की स्वीकृति के कारण उसका मन हल्का हो गया था। वह जल्दी ही सो गयी।

तीन चार दिन तक श्रीपति रोज उसी प्रकार रात को आता था। अन्तिम रात को जाते समय वह अपने साथ उस पोटली को भी लेता गया। दो दिन बाद सरला को मालूम हुआ, कि जिले का पुलिस सुपरि-

न्टेन्डेन्ट मिस्टर पियर्स, क्रान्तिकारियों की गोली से मारा गया।

धर पकड़ का बाजार गर्म हुआ। एक दिन सरला ने सुना, कि श्यामा गिरफ्तार हो गयी। बहुत से लड़के गिरफ्तार हुए। उनमें से एक, श्रीपति का किसी तरह भाई लगता था, मुखबिर हो गया। उसने अपने बयान में कहा, कि श्रीपति ने ही मिस्टर पियर्स को मारा है। उसने श्यामा का नाम तो लिया ही, यह भी कहा कि उसकी कई सहेलियाँ भी इस षड्-यन्त्र में थीं। एक दिन एकाएक सरला के घर में तलाशी आयी। वहाँ कुछ भी नहीं मिला, यद्यपि पुलिस ने वह ईंट हटा कर भी देखा। रस्सी मिल गयी। रामधारी से पूछा गया, तो उन्होंने बताया कि इस रस्सी के सम्बन्ध में उन्हें कुछ पता नहीं।

सरला भी गिरफ्तार कर ली गयी। न मालूम किसने यह बयान दिया था, कि श्रीपति उस रस्सी के सहारे उसके कमरे में आता था। पुलिस ने बहुत चेष्टा की, कि सरला मुखबिर बने, और बयान दे दे, उसने ऐसा करने से इनकार किया। वह बराबर कहती रही, कि उसे कुछ पता नहीं।

पुलिस ने रामधारी को बुला कर डाँटा। कहा..."तुम्हारी बहिन श्रीपति से फँसी हुई थी। रात को श्रीपति उस रस्सी के सहारे उसके कमरे में आया करता था। उससे कहो, कि सरकारी पक्ष में बयान दे दे, नहीं तो खानदान की खैरियत नहीं!"

रामधारी जेल में सरला से मिले। सारी बातें बतायीं। बोले... "तुमने तो हमारी नाक कटवा दी! कैसे इन आवारों के चक्कर में पड़ गयीं। तुम्हारी भौजाई ठीक ही कहती थी। पहले ही तुम्हारी शादी कर देता, तो इस आफत में न फँसता। मेरी नौकरी खतरे में है। चेयरमैन साहब जोर डाल रहे हैं, कि 'तुम बयान दिलवाओ!' खैर, जो हुआ, सो हुआ। अब इतनी नेकी हमारे साथ करो, कि बयान दे दो!"

पर सरला ने कहा..."भैया, मुझे तो कुछ भी नहीं मालूम है। मैं क्या बयान दूँ?"

रामधारी बहुत बिगड़ गये। बोले "ज्यादा बनो मत ! उस रस्सी से श्रीपति रोज रात को तुम्हारे पास आया करता था। और वह हराम-जादी श्यामा, जिसे मैं दुधमुंही बच्ची समझता था, कुटनी का काम करती थी। तुमने तो हमारे कुल में कालिक लगा दी ! हमें कहीं का नहीं रखोगी। मालूम होता है, भीख मंगवा कर छोड़ोगी। न मालूम, काहे का बदला ले रही हो"

इस पर सरला क्या कहती ? वह खेद, ग्लानि और दुख से रोने लगी। एक क्षण के लिये रामधारी का मन बहिन के लिये पसीज गया। बोले..."तुम बदनामी को डर रही हो ? पर मैं तुम्हारी शादी ऐसी जगह करूँगा, कि किसी को कानोकान खबर न होगी।"

रामधारी ने अपनी जान में बहुत अच्छी बात कही, पर सरला इस आश्वासन को सुन कर भय से सिहर उठी। श्रीपति को फाँसी पर टंगवा कर, एक अज्ञात कुलीन व्यक्ति के घर जाना, और उसकी पत्नी बनना, इससे तो यह कहीं अच्छा है, कि वह यहीं जेल की कोठरियों में सड़ कर मर जाय।

सरला ने मुखबिर होने से इनकार कर दिया।

थोड़े दिन में न मालूम कहाँ से श्रीपति भी गिरफ्तार हो कर आ गया। मुकदमा चल निकला। सरला के विरुद्ध कोई प्रमाण नहीं था, इसलिये वह छोड़ दी गयी। श्यामा पर मुकदमा चला।

सरला ने छूट कर देखा, कि अब उसके लिये घर जेल से भी बुरा हो चुका है। जेल में पुलिसवालों तथा जेलवालों की ज्यादती उतनी नहीं अखरती थी, क्योंकि यह अन्ततोगत्वा एक पद्धति के विरुद्ध दूसरी पद्धति का युद्ध था; पर यहाँ तो बिलकुल व्यक्ति के विरुद्ध व्यक्ति का युद्ध था।

रामधारी अपनी बहिन को मुखबिर न बनवा सके, इसलिये वे नौकरी से निकाल दिये गये। चेयरमैन ने बुला कर, उन्हें बुरा भला कहा। वे कुछ कांग्रेसी विचार के थे। बोले..."मेरी संस्था में किसी हिंसावादी के लिये स्थान नहीं।"

"हाँ...पर हुजूर, मैं तो न अहिंसावादी हूँ, न हिंसावादी......"

चेरमैन ने उसकी पूरी बात नहीं सुनी। बोले.. "मैं ऐसे व्यक्तियों को भी पसन्द नहीं करता, जिनके कोई विचार नहीं है!" कह कर, उनका हिसाब करा दिया, और उन्हें निकलवा दिया।

रामधारी के सीर पर मानो वज्र गिरा। वे दुनिया में हर तरह की विपत्ति एक बार झेल सकते थे। पर वे मध्यम श्रेणी के थे। नौकरी छूट जाना, और सो भी ऐसी नौकरी, जिसे वे अपनी योग्यता से अधिक ऊँचा समझते थे, उनके लिए बहुत बड़ा दुर्भाग्य था।

घर में आ कर उन्होंने सरला को बहुत बुरी तरह फटकारा शायद ही दुनिया में ऐसी कोई गाली हो, जो उन्होंने न दी हो। भाई हो कर बहिन को इतनी गालियाँ और इतनी भद्दी गालियाँ कोई दे सकता है, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। "चुड़ैल मरती भी नहीं! पैदा होने के बाद ही माँ बाप को खा गयी। मुझे भी खा जाती, तो अच्छा होता। पर इसे तो मुझे तील-तील करके मारना था। खसम कर लिया और उसके पीछे हमें बलिदान चढ़ा दिया। समझी थी कि बयान नहीं दूँगी, तो वह बच जायगा। पर क्या हुआ? तूने बयान नहीं दिया, तो दूसरे तो दे रहे हैं। फाँसी तो उसे होगी ही। अंग्रेज पर गोली चलाना कोई मजाक थोड़े ही है। मैंने कहा, 'बहिन बयान दे दे। वह तो फँसेगा ही, पर मेरा भला होगा।' पर नहीं मानी। अब मेरी नौकरी गयी। अब खाना मेरा मांस। चुड़ैल, हरामजादी, कलमुँही!" इत्यादि कह कर, उसने सरला के कमरे की सब चीजों को उठा उठा कर क्रोध में फेंक दिया।

सरला ने दो दिन तक खाना नहीं खाया। अन्त में भाई का दिल पसीजा। उसने मना कर खिलाया। पर भौजाई का क्रोध इससे कहीं अधिक था। एक दिन सरला के हाथ से एक प्याला गिर कर टूट गया। इस पर वह डंडा लेकर, सरला पर पिल पड़ी। बुरी तरह पीट डाला, और घायल करके उसे छोड़ दिया।

इसी प्रकार अक्सर होता रहा।

रामधारी को कोई ढंग की नौकरी नहीं मिली। चालीस से अधिक कोई देना नहीं चाहता था, और रामधारी चालीस की नौकरी करना अपनी हेठी समझते थे। ज्यों-ज्यों दिन बितते गये, त्यों-त्यों उनका मिजाज बिगड़ता गया। और वह गुस्सा किस पर उतरता? बस, इसके लिये एक सरला ही तो थी।

एक दिन रामधारी की स्त्री, सोहनी, ने रामधारी से कहा...."तुम तो बस अपनी बहिन पर ही जान देते हो। अब मैंने एक बात तय की है। कहीं इसका विरोध न कर बैठना।"

रामधारी ने कहा..."वह क्या?"

"मैंने सरला की शादी तय की है। अधेड़ उम्र का आदमी है। तगड़ा है। पहली स्त्री से दो, तीन बच्चे हुए थे, पर सब मर गये। वर अकेला ही है।" कह कर उसने पति के चेहरे की तरफ देखा।

रामधारी ने कहा..."तुम क्या समझ रही हो, कि मैं चुपचाप बैठा हूँ। अपने लिये नौकरी खोजता हूँ, साथ ही उसके लिये वर भी ढूँढता हूँ। पर कोई शादी करने के लिये राजी ही नहीं होता। श्रीपति वाली बात सब लोगों को मालूम हो चुकी है। बदनाम लड़की से कौन शादी करेगा?"

सोहनी के चेहरे पर एक खुशी की लहर दौड़ गयी। बोली..."मैं भी तो खोजती-खोजती थक गयी। तुमसे बताया नहीं, कि कहीं तुम्हें और कष्ट न हो।" फिर आवाज नीची करती हुई, बोली..."इस लिये मेरी यह राय है, कि जल्दी से शादी कर दी जाय। कहीं ऐसा न हो, कि वर को श्रीपति वाली बात मालूम हो जाय।..."

"हाँ, हाँ," रामधारी ने कहा..."पर जरा सब बातें देख तो लें।"

"बस, मैंने कहा था न, कि अभी नहीं सीखे हो। शादी करके जल्दी छुट्टी पा लो।" फिर आवाज नीची करती हुई, बोली..."और सुनो। एक हजार रुपये देगा। उसमें शादी का खर्च भी निकल आयेगा, और

कुछ शायद बच भी जाय।"

'बच जाय' शब्दों पर सोहनी ने अधिक ज़ोर दिया। फिर भी रामधारी को पूरा संतोष नहीं हुआ। पर राजी तो होना ही पड़ा। जिसकी शादी थी उसे कोई खबर नहीं दी गई। चुपके चुपके तैयारी होने लगी।

४

सरला की शादी के पहले ही मुकदमे का फैसला हो गया। श्रीपति को फाँसी की सजा हुई। अन्य लोगों को अन्य सजायें हुईं। श्यामा को सात साला की सजा हुई।

सरला को किसी तरह ये खबरें मालूम हो गयीं। उसका बहुत जी चाहता था, कि एक दफा कम से कम एक दफा अपने इन साथियों से, विशेषकर श्रीपति से मिल ले, पर उसकी यह इच्छा के पूर्ण न हो सकी। सच तो यह है कि वह किसी से इस इच्छा के सम्बन्ध में कह भी नहीं सकी। श्रीपति के साथ उसकी बदनामी ने उसके चारों तरफ एक ऐसी दीवार खड़ी कर दी थी, जिसके उस पार जाना तो दूर रहा, देखना भी सम्भव नहीं था। वह मन मार कर रह गयी।

तिस पर उसे यह खबर मिली, कि एक शराबी से उसकी शादी होने जा रही है। किसी ने उससे न तो कुछ पूछा, और न उसने ही किसी से इस सम्बन्ध में कुछ कहा। कहना सुनना सब बेकार था। एक ही व्यक्ति को वह जानती थी, जो उसे दूर विपत्ति से उबार सकता था। पर वह इस समय उससे दूर, अपने मित्रों तथा परिचितों से दूर खूनी साम्राज्य-वाद के कारागार के फाँसी घर में अपने अंतिम दिन गिन रहा था।

सरला ने सोचा, कि जब सबका सर्वनाश हो रहा है, जब श्रीपति के जीवन का दीप धीरे-धीरे बुझ रहा है, तो फिर उसे ही क्या पड़ी है कि वह अपनी रक्षा करती फिरे? हो, उसका भी सर्वनाश हो! हो, उसकी शादी हो! एक शराबी रंडुवे से ही शादी हो। अब कुछ भी हो, क्या बने बिगड़ेगा! जब मेड़ की जड़ ही कट गयी, तो उसे ऊपर से खींचने से क्या फायदा?

सरला की शादी हो गयी। उसने वर की तरफ देखा भी नहीं। एक दिन शंख बजे। शायद कुछ बाजे-वाजे भी बजे। और वह अपने पति के साथ अपने नये घर में चली गयी। स्त्रियों का स्वभाव है, कि ससुराल जाते समय रोती-धोती हैं, पर उस प्रकार वह बिल्कुल नहीं रोयी। उसे न अपने पुराने घर से मोह था, न नये घर से। हाँ, जब उसने अंतिम बार अपने कमरे की उस जगह को देखा, जहाँ श्रीपति सोया था तो उसकी आँखों में आँसू भर आये। पता नहीं, ये आँसू श्रीपति के लिये थे, या उस जगह के लिये, या अपने लिये। उसने जल्दी से उन आँसुओं को पोंछ डाला। रोने की जल्दी क्या थी? जीवन भर तो उसे रोना ही था।

एक दिन सरला ने अपने नये घर से देखा, कि बाहर, लोग जुलूस बना कर, बड़े जोरों से 'जिन्दाबाद' के नारे लगाते हुए जा रहे हैं। जब वह जूलूस बिल्कुल सामने आ गया, तो उसने देखा, कि छात्रों की आँखें लाल हो रही हैं, गले फटे हुए हैं। और वे चिल्ला रहे हैं..."साम्राज्यवाद का नाश हो! पूंजीवाद का नाश हो! शहीद श्रीपति जिन्दाबाद!...

सरला ने अच्छीतरह कान लगा कर सुना। हाँ, लोग 'शहीद' ही कह रहे थे।

वह समझ गयी, कि इसका अर्थ क्या है। वह समझ गयी, कि श्रीपति को फाँसी दे दी गयी। बस, उससे रुका नहीं गया। वह जा कर भीतर धम से गिर पड़ी। पता नहीं, कब तक बेहोश रही। जब उठी, तब भी वह रो रही थी। उस दिन उसने खाना नहीं पकाया। रात को पति देवता जब आये, और उन्हें खाना नहीं मिला, तो वे एकदम बरस पड़े। शराब पिये हुए थे। लगे सरला को पीटने। पर सरला को इसका तनिक भी मलाल न हुआ। उसे चाहे लोग मार डालते, पर श्रीपति को छोड़ देते...

छः साल बाद...

इस बीच में सरला के कई बच्चे हुए, और सब मर भी गये। खाने

को नहीं पीने को नहीं, फिर बच्चे जीते कैसे ? पहले की सरला और अब की सरला में कोई समानता नहीं दिखती थी। क्या कोई अब कह सकता था, कि यह वही सरला है, जो कभी क्रांतिकारी दल की सदस्या थी ? उस घर में कभी अखबार नहीं आता था, इस कारण उसे देश के सम्बन्ध में कुछ पता नहीं था। और पता होता भी, तो वह क्या करती ?

उसका पति पता नहीं क्या नौकरी करता था। न जाने किसी दूकान में था, या किसी दफ्तर में। उसे यह भी कभी पता नहीं लगा, कि उसकी क्या आय है ? जो भी आय रही हो, सब नशे में निकल जाती थी। घर में हमेशा अन्न की कमी रहती थी। एक के बाद बच्चे आये, और मर गये। न तो उत्सव मनाया जाता था, न कोई डाक्टर ही आता था। बीच बीच में सरला रोती थी पर पता नहीं क्यों रोती थी ?

एक दिन उसने देखा, कि एक जुलूस निकल रहा था। बड़ा भारी जुलूस था। मालूम नहीं, काहे का जुलूस था ? पर सारा शहर उमड़ा हुआ मालूम देता था। नेताओं के नाम ले ले कर जयकार हो रहा था। जुलूस में उसने एक सजी हुई 'जीप' पर शायद श्यामा को देखा। हाँ, श्यामा ही थी, वह। वही चेहरा था। वैसा ही रूप था, बल्कि कुछ निखरा ही था। जो दुख झेलने पड़े थे, उनसे उसके चेहरे का और निखार ही हुआ था। उसके जी में आया, कि वह चिल्ला कर पुकारे, कि श्यामा, श्यामा मैं सरला हूँ।" पर किसी ने जैसे उसके गले को दबा दिया। उसके गले से आवाज नहीं निकली। श्यामा कितने अच्छे कपड़े पहने हुए थी। और वह ? उसके कपड़ों में बीसियों छेद थे। वह खाँसने लगी। इधर कई दिन से खाँसी में खून भी आ रहा था।

जुलूस चला गया, तो उसे किसी ने बता दिया, कि "आज रात को स्वतंत्रता मिलेगी। उसी की तैयारी है। सब तरफ से जुलूस इकट्ठे हो रहे हैं। रात को एकसाथ निकलेंगे।"

उसने आश्चर्य के साथ कहा..."स्वतंत्रता मिलेगी ?" और उसका चेहरा खिल गया, पर खांसी आ गई।

उसे तपेदिक हो गया था। वह सबेरे से शाम तक अथक परिश्रम करती थी। उसे तो स्वतंत्रता, मुक्ति, स्वाधीनता तभी मिलेगी, जब वह मर जायगी। पर मृत्यु भी शायद अभी दूर थी।